अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका – जून २०१७

दिव्य मुस्कान

विषय-सूची

मुस्कुराते रहो/सम्पादकीय		३
(श्रीअरविन्द तथा श्रीमाँ के वचन)		
भागवत मुस्कान		५
जीवन की ओर देख कर मुस्कुराना		९
प्रफुल्लता		२०
अपनी मुस्कान को बनाये रखना		२४
शाश्वत की मुस्कान		३३
प्रभु की मुस्कान-छटाएँ		३६
प्रभु का दुलारभरा स्पर्श		४०
संसार की प्रसन्नचित्त नागरिक		४१
'पुरोधा'		
दैनन्दिनी		४२
श्रीमाँ के साथ पत्र-व्यवहार	'श्रीमातृवाणी' से	४५
आज की कहानी	स्व. श्री रवीन्द्रजी	४९
मुस्कान के मनके	वन्दना	५५

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :
एक वर्ष—१८०रु.; तीन वर्ष—५२०रु.; पाँच वर्ष—८६०रु.।
पत्रिका हर महीने की ४ तारीख़ को प्रेषित की जाती है।

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

जो भगवान् हँस नहीं सकते
वे इस हास्यजनक विश्व का निर्माण भी न कर पाते।—श्रीमाँ

मुस्कुराते रहो

"हर सवेरे माँ मुझसे कहा करती थीं: "सुदिनम्!" उस रोज़ उन्होंने एक फूल उठाया, नाम था शाश्वत मुस्कान; मेरा हाथ पकड़ा, मेरी हथेली के बीचोबीच वह फूल रखा, हथेली पर एक प्यारभरी चिकोटी भरी, कुछ समय तक मेरे हाथ को अपने हाथ में दबाये रखा, फिर कहा:

"चम्पकलाल, हमेशा मुस्कुराते रहना, कठिनाइयों में मुस्कुराना, कष्ट में मुस्कुराना, दुःख-दर्द में मुस्कुराना, अवसाद में मुस्कुराना, हमेशा मुस्कुराना, हमेशा मुस्कुराते रहना, मुस्कान।"

'Champaklal Speaks' से

सम्पादकीय: जीवन-यात्रा कोई सुखद सैर नहीं है। और यह तब तक अन्यथा हो भी नहीं सकती जब तक यह यात्रा अन्धकारमय क्षेत्रों में विचरती और अज्ञान की शक्तियों से हाँकी जाती रहेगी। और फिर भी, इस सबके पीछे 'भागवत कृपा' की अक्षय मुस्कान हमेशा बनी रहती है जिसकी एक चितवन समस्त अन्धकार को तितर-बितर करने और आशा की जोत जगाने के लिए काफ़ी है, जिसकी 'प्रेम' तथा 'करुणा' की भुजाएँ हमारी भुजाओं को थाम कर हमें अन्धा बना देने वाली आँधियों और विक्षुब्ध क्षेत्रों से निकाल कर 'सौन्दर्य', 'प्रज्ञा' तथा 'परमानन्द' के विस्तृत गलियारों में ले जाती हैं।

यह अंक उस 'भागवत मुस्कान' को समर्पित है जो समस्त अस्तित्व को सहारा देती है और जीवन-पथ पर आगे बढ़ने के लिए हमें आवश्यक सहायता तथा बल प्रदान करती है।

उनकी चितवन, उनकी मुस्कान दिव्य बोध को जगा देती
पार्थिव-पदार्थ तक में, और उनका उत्कट आह्लाद
मानव के जीवनों पर एक दिव्य सौन्दर्य उँड़ेल देता।

'सावित्री', पृ. १५ *—श्रीअरविन्द*

भागवत मुस्कान

हे मधुर सामञ्जस्य जो सभी चीज़ों में निवास करता है, मधुर सामञ्जस्य जो मेरे हृदय को भरता है, अपने-आपको जीवन के बाह्यतम रूपों में, हर भावना में, हर विचार में और हर क्रिया में प्रकट कर।

बाहरी कोलाहल के बावजूद मुझे सब कुछ सुन्दर, सामञ्जस्यपूर्ण, नीरव मालूम होता है। और इस नीरवता में, हे नाथ, मैं तुझे ही देखती हूँ; और मैं तुझे इस तरह देखती हूँ कि मैं इस दर्शन का वर्णन सतत मुस्कान के रूप में ही कर सकती हूँ। सचमुच, जब मैं तुझे इस रूप में देखती हूँ तो तेरी अधिक-से-अधिक मधुर, अधिक-से-अधिक शान्त, अधिक-से-अधिक करुणामयी मुस्कान को देख कर मुझे जो अनुभूति होती है उसके सादृश्य में यह अनुभव बहुत ही हेय है।

वर दे कि तेरी 'शान्ति' सबके साथ रहे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २२

धीरज-भरी और सहानुभूतिपूर्ण शुभेच्छा की मुस्कान

... इस वर्तमान यन्त्र में, जिसे तू मेरे द्वारा "मैं" कहलवाता है, मुझे हर चीज़ मामूली, अपर्याप्त, उदासीन, लगभग जड़ मालूम होती है। मैं तेरे साथ जितनी युक्त होती जाती हूँ, उतना ही अधिक उसकी क्षमताओं और उसकी अभिव्यक्तियों की सामान्यता का अनुभव करती जाती हूँ। इसमें हर चीज़ मुझे असंशोधनीय सादृश्य-सी लगती है। और यदि यह चीज़ मुझे किसी तरह क्षुब्ध नहीं कर पाती तो इस कारण कि मेरी सच्ची आत्मा तेरे चरणों में प्रणत है या तेरे हृदय में दुबकी हुई है या तेरी शाश्वत और निर्विकार 'चेतना' के साथ सचेतन है और समस्त अभिव्यक्ति को धीरज-भरी और सहानुभूतिपूर्ण शुभेच्छा की मुस्कान के साथ देखती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ८८

पूर्ण ऐक्य की निश्चिति की मुस्कान

प्रेम और पवित्रता के हे दिव्य स्वामी, वर दे कि यह यन्त्र जो योग्य रीति से तेरी सेवा करना चाहता है, वह अपनी छोटी-से-छोटी स्थितियों में, अपनी छोटी-से-छोटी क्रियाओं में भी समस्त अहंकार, समस्त भ्रान्ति, समस्त अन्धकार से रहित हो जाये ताकि उसके अन्दर कोई भी चीज़ तेरी क्रिया को दुर्बल या विकृत न बना सके और न ही उसे रोक सके। तेरे प्रकाश की पूरी रोशनी से दूर कितने ही छोटे-छोटे अन्तराल अभी तक छाया में पड़े हैं : मैं उनके लिए इस प्रकाश का परम सुख माँगती हूँ।

धन्य है वह शुद्ध दोषहीन स्फटिक होना जो तेरी दिव्य किरण को धुँधला किये, रँगे या विकृत किये बिना निकल जाने देता है!—पूर्णता की कामना से नहीं बल्कि इस कारण कि तेरा कार्य जहाँ तक सम्भव हो पूर्णता के साथ हो।

और जब मैं तुझसे यह माँगती हूँ तो वह "अहम्" जो तेरे साथ बोलता है, समस्त 'पृथ्वी' होता है जो वह शुद्ध हीरा बनने की अभीप्सा करता है जो तेरे परम प्रकाश का पूर्ण प्रतिबिम्ब हो। सभी मनुष्यों के हृदय मेरे हृदय में धड़कते हैं, उनके सभी विचार मेरे विचार में स्पन्दित होते हैं, किसी पालतू पशु की या मामूली-से पौधे की ज़रा-सी अभीप्सा भी मेरी अतिविशाल अभीप्सा के साथ मिल कर तेरे प्रेम और प्रकाश की विजय के लिए तेरी ओर उठती है, वह तुझे पाने के लिए सत्ता के शिखरों पर चढ़ती है, तुझे अपने गतिहीन आनन्द में से अपहृत करके पीड़ा के अन्धकार में प्रविष्ट कराती है ताकि तू उसे दिव्य 'आनन्द' में और परम 'शान्ति' में रूपान्तरित कर दे। और यह उग्रता उस अनन्त प्रेम से बनी है जो अपने-आपको देता है और उस विश्वासपूर्ण प्रशान्ति से बनी है जो तेरे पूर्ण 'ऐक्य' की निश्चिति के साथ मुस्कुराती है।

हे मेरे मधुर स्वामी, तू विजेता है और तू ही विजय, तू ही जीतने वाला है और तू ही जीत!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ९३-९४

जो कुछ है, जो कुछ होगा और जो कुछ नहीं है,
सबके मर्म में तेरी दिव्य, अपरिवर्तनशील मुस्कान है।

सृष्टि की स्मिति

हर बार जब कोई हृदय तेरे दिव्य श्वास के स्पर्श से उमग उठता है तो ऐसा लगता है कि 'पृथ्वी' पर थोड़ी और सुन्दरता उभर आयी है, हवा एक मधुर सुगन्ध से सुगन्धित हो गयी है और सब कुछ अधिक मैत्रीपूर्ण हो गया है।

समस्त अस्तित्वों के प्रभो, तेरी शक्ति कितनी महान् है कि तेरे आनन्द का एक परमाणु इतने अधिक अन्धकार को मिटाने, इतने अधिक दुःखों को दूर करने के लिए काफ़ी है और तेरी महानता की एक किरण अत्यन्त मन्द कंकड़ों को चमका सकती और काली से काली चेतना को भी आलोकित कर सकती है!

तूने मेरे ऊपर अपनी कृपाओं के अम्बार लगा दिये हैं; तूने मेरे लिए बहुत-से रहस्यों के परदे उठा दिये हैं, तूने मुझे बहुत-सी अप्रत्याशित और अनपेक्षित खुशियों का आस्वादन कराया है, लेकिन तेरी कोई कृपा उस कृपा की बराबरी नहीं कर सकती जो तू मुझे उस समय प्रदान करता है जब तेरे दिव्य श्वास के स्पर्श से कोई हृदय हर्ष से नर्तन करने लगता है।

इन धन्य घड़ियों में धरती आनन्द के गीत गाती है, वनस्पतियाँ हर्ष से रोमाञ्चित हो उठती हैं, पवन प्रकाश से स्पन्दित हो जाता है, वृक्ष अपनी आतुरतम प्रार्थना स्वर्ग की ओर उठाते हैं, चिड़ियों का चहकना भजन बन जाता है, सागर-तरंगें प्रेम से आलोड़ित हो जाती हैं, बच्चों की मुस्कान अनन्त के बारे में कहती है और मनुष्यों की आत्माएँ उनकी आँखों में दिखायी देने लगती हैं।

कह दे, क्या तू मुझे वह अद्‌भुत शक्ति प्रदान करेगा जो प्रत्याशी हृदयों में इस उषा को जन्म दे सके, जो मनुष्यों की चेतना को तेरी भव्य उपस्थिति के प्रति जगा सके और इस रिक्त और दुःख-भरे जगत् में तेरे सच्चे स्वर्ग को थोड़ा-सा जगा दे? इस अद्‌भुत उपहार की बराबरी कौन-सी खुशी, कौन-सी समृद्धि, कौन-सी पार्थिव शक्तियाँ कर सकती हैं!

हे प्रभो, मैंने कभी तुझसे व्यर्थ में अनुनय-विनय नहीं की है क्योंकि जो तेरे साथ बोलता है वह मेरे अन्दर तू ही है।...

इस चिर नवीन चमत्कार के आगे सब मूक भक्ति में घुटने टेके हुए हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २०४

प्रभु के साथ हँसो

किन्तु समस्त वस्तुओं में यह 'उपस्थिति'... यह एक 'स्पन्दन' है, किन्तु एक ऐसा 'स्पन्दन' है जिसमें सब कुछ मौजूद है—'स्पन्दन', जिसमें एक प्रकार की अनन्त शक्ति, अनन्त आनन्द और अनन्त शान्ति है और है विशालता, विशालता, विशालता, वहाँ कोई सीमाएँ नहीं...। किन्तु है यह एक स्पन्दन ही, यह... ओह, प्रभु! इसके बारे में सोचा नहीं जा सकता, इसलिए कुछ कहा भी नहीं जा सकता। यदि व्यक्ति सोचे तो सोचते ही सारी खदबद फिर से शुरू हो जाती है, इसी कारण उसके सम्बन्ध में वह कुछ कह भी नहीं सकता।

नहीं, वे बहुत दूर हैं, क्योंकि तुम उन्हें बहुत दूर मानते हो। तब भी जब तुमने यह सोचा कि वे इस प्रकार *(अपने मुख की ओर संकेत करती हैं)* मौजूद हैं, तुम्हारा स्पर्श कर रहे हैं... यदि तुमने उनकी उपस्थिति अनुभव की हो। यह किसी व्यक्ति के साथ सम्पर्क जैसा नहीं होता। यह वैसा नहीं है। यह एक ऐसी वस्तु है जो बाह्य या परकीय नहीं है, जो बाहर से अन्दर की ओर नहीं आती। यह वैसी नहीं है... यह सर्वत्र है।

अतएव तुम सर्वत्र, सर्वत्र, सर्वत्र—अन्दर, बाहर, सर्वत्र, सर्वत्र केवल उन्हें ही अनुभव करते हो—उन्हें, उनके सिवाय कुछ नहीं। वे, उनके 'स्पन्दन'।

नहीं, तुम्हें यह बन्द करना होगा *(सिर की ओर संकेत करती हैं)*, जब तक तुम इसे बन्द न करोगे, तब तक 'सच्ची वस्तु' को नहीं देख सकोगे—तुम तुलनाएँ ढूँढ़ते हो, तुम कहते हो: "यह ऐसा है, यह वैसा है," ओह! *(मौन)*

और तुम्हें कितनी बार, कितनी बार यह प्रतीत होता है... कोई रूप नहीं है—रूप है भी और नहीं भी, तुम इसके विषय में कुछ नहीं कह सकते। दृष्टि का आभास होता है पर आँखें नहीं हैं, किन्तु दृष्टि है—दृष्टि है, मुस्कुराहट है और मुँह नहीं है, चेहरा नहीं है। पर फिर भी मुस्कुराहट है, दृष्टि है और *(माताजी हँसती हैं)* तुम यह कहे बिना नहीं रह सकते: "हाँ, प्रभु, मैं मूर्ख हूँ!" किन्तु वे हँसते हैं, और तुम भी हँसते हो और आनन्दित होते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. १८०-८१

जीवन की ओर देख कर मुस्कुराना

समता की मुस्कान

सारा मनोमय जगत्, जिसमें तुम रहते हो, सीमित है, तुम्हें उसकी सीमाओं का ज्ञान या अनुभव भले न हो, और यह आवश्यक है कि कोई चीज़ आये और इस भवन को, जिसके अन्दर तुम्हारे मन ने अपने-आपको बन्द कर रखा है, तोड़ डाले और उसे बन्धन-मुक्त कर दे। उदाहरणार्थ, तुम्हारे कुछ बँधे हुए नियम, विचार या सिद्धान्त होते हैं जिन्हें तुम सर्वोपरि महत्त्व देते हो; अधिकतर, ये किन्हीं नैतिक सिद्धान्तों अथवा उपदेशों के आधार पर होते हैं, जैसे "अपने माता-पिता का आदर करो" *(मातृदेवो भव, पितृदेवो भव)* या "हिंसा नहीं करनी चाहिये" *(अहिंसा परमो धर्मः)* इत्यादि। प्रत्येक मनुष्य की अपनी धुन होती है अथवा कोई दकियानूसी विश्वास। प्रत्येक मनुष्य समझता है कि दूसरे लोग जिन पूर्वाग्रहों से बँधे हुए हैं उनसे वह सर्वथा मुक्त है और वह उन्हें बिलकुल मिथ्या समझने के लिए भी तैयार रहता है। परन्तु वह सोचता है कि उसका अपना मतवाद दूसरों की तरह नहीं है, वह तो उसके लिए बिलकुल सत्य है, वास्तविक सत्य। मन के बनाये हुए किन्हीं नियमों में आसक्ति होना इस बात का सूचक है कि अब भी कहीं पर अन्धापन छिपा हुआ है। उदाहरण के लिए, इस सार्वजनिक अन्धविश्वास को ले लो जो समस्त जगत् में फैला हुआ है कि संन्यास और योग एक ही हैं। यदि तुम योगी अथवा योगिनी कह कर किसी का परिचय दो तो तुरत उस व्यक्ति के बारे में लोग यही कल्पना करने लगेंगे कि वह व्यक्ति कोई ऐसा होगा जो खाता नहीं अथवा सारे दिन एक आसन पर बिना हिले-डुले बैठा रहता है, किसी कुटिया में अत्यन्त दरिद्रतापूर्वक रहता है, जिसने अपना सब कुछ दे दिया है और अपने लिए कुछ भी नहीं रखा। जब किसी आध्यात्मिक मनुष्य के सम्बन्ध में किसी से कुछ कहा जाता है तो निन्यानबे प्रतिशत लोगों के मन में उस व्यक्ति के सम्बन्ध में इसी प्रकार का चित्र खिंच जाता है; इनके लिए आध्यात्मिकता का एकमात्र सबूत है दरिद्रता तथा सुखद या आरामदेह चीज़ों से परहेज़। यह एक मानसिक रचना है और यदि तुम आध्यात्मिक सत्य का साक्षात्कार और अनुसरण करने के लिए स्वतन्त्र होना चाहते हो तो इसे नष्ट करना होगा।

कारण, आध्यात्मिक जीवन में तुम सच्ची अभीप्सा के साथ प्रवेश करते हो और चाहते हो कि तुम अपनी चेतना और जीवन में भगवान् से भेंट करो तथा उनका साक्षात्कार करो; तब तुम एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचते हो जिसे किसी तरह भी कुटिया नहीं कहा जा सकता और वहाँ तुम्हारी एक ऐसे आध्यात्मिक पुरुष से भेंट होती है जो सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा है, सब कुछ खाता है, उसके चारों ओर सुन्दर या अमीरी चीज़ों का ठाठ है, जो कुछ उसके पास है उसे वह ग़रीबों को बाँट नहीं देता, बल्कि लोग जो भेंट चढ़ाते हैं उसे स्वीकार करता और उसका उपभोग करता है। यह देख कर तुम अपने बँधे हुए मानसिक नियम के अनुसार तुरत घबरा जाते और चिल्ला उठते हो : "क्यों, यह सब क्या है? मैंने तो सोचा था कि मेरी भेंट किसी योगी से होगी!" इस मिथ्या धारणा को तोड़ना ही होगा, मिटाना ही होगा। यह धारणा विलीन हो जाये तो तुम्हें कुछ ऐसी चीज़ प्राप्त होगी जो तुम्हारे वैराग्य के संकीर्ण सिद्धान्त से बहुत श्रेष्ठ होगी, तुम्हारा पूर्ण आत्मोद्घाटन हो सकेगा जिसके फलस्वरूप तुम्हारी सत्ता मुक्त रहेगी। यदि तुम्हें कोई चीज़ प्राप्त होती हो तो उसे स्वीकार करो और यदि उसी चीज़ को छोड़ देना हो तो उसी तत्परता के साथ छोड़ दो। चीज़ें आयें तो उन्हें स्वीकार करो और चली जायें तो जाने दो, लेते और छोड़ते समय समता की वही मुस्कान बनी रहे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ६०-६२

कठिनाइयों पर मुस्कुराओ

हम सभी स्वीकार करते हैं कि जगत् गर्हित है, यह वैसा नहीं है जैसा इसे होना चाहिये, और एकमात्र चीज़ जो हमें करनी है वह है इसे अन्य प्रकार का बनाने के लिए कार्य करना। फलस्वरूप, हमारा सारा प्रयास व व्यस्तता होनी चाहिये—इसे भिन्न प्रकार का बनाने के लिए सर्वोत्तम उपाय खोज निकालना; और हम एक बात समझ सकते हैं, वह यह कि सर्वोत्तम साधन (यद्यपि हम इसे अभी एकदम अच्छी तरह नहीं जानते) स्वयं हमलोग हैं, हैं न? और निश्चय ही हम अपने पड़ोसी को जितना जानते हैं उससे अधिक अच्छे रूप में अपने-आपको जानते हैं—उदाहरणार्थ, हम मानव-प्राणी के अन्दर अभिव्यक्त चेतना को नक्षत्रों में अभिव्यक्त चेतना की अपेक्षा कहीं

अधिक अच्छी तरह समझते हैं। अतएव, थोड़ी हिचकिचाहट के बाद हम कह सकते हैं, "आख़िरकार, सर्वोत्तम उपाय बस वही है जो मैं हूँ। मैं बहुत अच्छी तरह नहीं जानता कि मैं क्या हूँ, परन्तु जिस समष्टि का मैं एक रूप हूँ यही सम्भवतः मेरा कार्य है, यही सम्भवतः इस कार्य में मेरा भाग है, और यदि मैं इसे यथासम्भव अच्छे-से-अच्छे रूप में करूँ तो शायद जो मैं कर सकता हूँ उसमें वह सर्वोत्तम होगा।" यह एक बहुत बड़ा प्रारम्भ है, बहुत बड़ा। यह कोई बहुत अधिक नहीं है, तुम्हारी सम्भावनाओं की सीमाओं से बाहर भी नहीं है। तुम्हारा कार्य तुम्हारे समीप है, यह सर्वदा तुम्हारी पहुँच के अन्दर है, कहने का मतलब, यह सदा वहाँ मौजूद है ताकि तुम उसमें लग जाओ—यह एक ऐसा कार्यक्षेत्र है जो तुम्हारी शक्ति के अनुपात में है, पर पर्याप्त विविध, पर्याप्त जटिल, पर्याप्त विशाल, मज़ेदार होने के लिए पर्याप्त गभीर है। और तुम इस अज्ञात जगत् का अन्वेषण करते हो।

बहुत-से लोग कहते हैं, "परन्तु तब तो यह अहम्मन्यता है!"—यह अहम्मन्यता तब है यदि तुम इसे अहंकारपूर्ण ढंग से करो, अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए करो, यदि तुम शक्तियाँ प्राप्त करने की, दूसरों को प्रभावित करने के लिए यथेष्ट शक्तिशाली बनने की कोशिश करो, अथवा यदि तुम अपने लिए सुखी जीवन यापन करने के उपाय खोजो। स्वाभाविक है कि यदि तुम इसे इस भाव के साथ करो तो वह अहंकारपूर्ण होगा। परन्तु इसकी ख़ूबसूरती यह है कि तुम कहीं भी नहीं पहुँचोगे! तुम आत्म-प्रवञ्चना के साथ आरम्भ करोगे, तुम बढ़ती हुई भ्रम-भ्रान्तियों में निवास करोगे और तुम अधिकाधिक अन्धकार में गिरते जाओगे। परिणामतः, वस्तुएँ, हम जितना समझते हैं उससे बहुत अधिक अच्छे रूप में, संगठित हैं; यदि तुम अपना कार्य अहंकारपूर्ण ढंग से करोगे (हम कह चुके हैं कि हमारा कार्यक्षेत्र सर्वदा हमारी पहुँच के अन्दर है) तो उसका फल कुछ नहीं होगा। इसी कारण आवश्यक शर्त है भागवत कर्म की संसिद्धि के लिए अपनी अभीप्सा में पूर्ण सच्चाई रखते हुए उसे करना। अतएव यदि तुम इस तरह प्रारम्भ करो तो मैं तुम्हें विश्वास दिला सकती हूँ कि तुम्हारी यात्रा इतनी मज़ेदार होगी कि यदि उसमें तुम्हें दीर्घकाल भी लग जाये तो तुम कभी थकावट नहीं महसूस करोगे। परन्तु तुम्हें उसे उसी तरह, तीव्र संकल्प के साथ, लगन के साथ और उस अनिवार्य प्रसन्नचित्तता के साथ करना चाहिये

जो कठिनाइयों पर मुस्कुराती और भूलों पर हँसती है। तब सब कुछ अच्छे ढंग से चलता रहेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३०१-०३

प्रज्ञाभरी मुस्कान

मनुष्य को अपने अन्दर बहुत सारी छोटी-छोटी गुप्त तहें, छोटी-छोटी चीज़ें मिलती हैं जो प्रारम्भ में नहीं दिखायी देती थीं; मनुष्य एक प्रकार का आन्तरिक शिकार शुरू कर देता है, छोटे-छोटे अन्धकारपूर्ण कोनों में शिकार खोजने लगता है और अपने-आपसे कहता है : "क्या, मैं ऐसा था! यह चीज़ मेरे अन्दर थी, मैंने इस नन्हीं चीज़ को पोस रखा है!"—कभी-कभी तो वह इतनी गन्दी, इतनी नीच, इतनी घिनौनी होती है! और एक बार जब उसका पता लग जाता है, कितना आश्चर्यजनक लगता है! फिर मनुष्य उस पर ज्योति की किरण डालता है और वह विलीन हो जाती है! और फिर उसके बाद तुम्हारे अन्दर वे प्रतिक्रियाएँ नहीं होतीं जो पहले तुम्हें इतना उदास बना दिया करती थीं, जब तुम कहा करते थे, "ओह! मैं वहाँ कभी पहुँच नहीं सकता।" उदाहरणार्थ, तुम एक बहुत साधारण-सा संकल्प (ऊपर से देखने में बहुत साधारण) करते हो : "मैं अब कभी झूठ नहीं बोलूँगा।" और अचानक, तुम्हारे बिना जाने कि क्यों और कैसे, झूठी बात बिलकुल अपने-आप निकल पड़ती है और तुम उसे तब देखते-जानते हो जब वह मुँह से निकल चुकती है। तुम कहते हो : "यह तो सही बात नहीं है—जो मैंने अभी-अभी कहा; मैं तो कुछ और ही कहना चाहता था।" अब तुम खोजते हो, खोजते हो... "यह कैसे घटित हुआ? मैंने कैसे उस ढंग से सोचा और वैसा कह दिया? कौन-सी चीज़ मेरे अन्दर से बोली, किसने मुझे उकसाया?..." तुम अपने-आपको बिलकुल सन्तोषजनक व्याख्या दे सकते और कह सकते हो, "यह चीज़ बाहर से आयी थी" अथवा "यह अचेतनता का एक क्षण था," और इस विषय में और ज़्यादा नहीं सोचते। और दूसरी बार, फिर यह बात घटित होती है। उसके स्थान पर, तुम इस प्रकार खोजते हो : "उस व्यक्ति का क्या उद्देश्य हो सकता है जो झूठ बोलता है?..." और तुम आगे बढ़ते हो—और आगे बढ़ते हो और एकाएक तुम एक छोटे-से कोने में एक ऐसी चीज़ को खोज निकालते हो

जो अपने-आपको सत्य सिद्ध करना चाहती है, बलपूर्वक स्वयं आगे बढ़ जाना चाहती है अथवा देखने के अपने निजी तरीके को स्थापित करना चाहती है (चाहे जो भी हो, उससे कुछ आता-जाता नहीं, उसके कई कारण हो सकते हैं), अपने-आपको उससे थोड़ा भिन्न रूप में दिखाना चाहती है जो वह है, ताकि लोग तुम्हारे विषय में थोड़ी अच्छी राय बनायें और यह समझें कि तुम कोई बहुत विशिष्ट व्यक्ति हो।... बस, यही चीज़ थी जो तुम्हारे अन्दर बोल पड़ी थी—तुम्हारी सक्रिय चेतना नहीं, बल्कि वही चीज़ जो वहाँ थी और जिसने तुम्हारी चेतना को पीछे से उकसाया था। जब तुम पूरी तरह सावधान नहीं थे, इसने तुम्हारे मुँह का, तुम्हारी जीभ का उपयोग कर लिया, और तब तुम सचेत हुए! झूठ निकल पड़ा। मैं तुम्हें यह उदाहरण दे रही हूँ—लाखों दूसरे उदाहरण हैं। और यह सब अत्यन्त मज़ेदार है। और जिस हद तक मनुष्य अपने अन्दर इस चीज़ की खोज करता है और सच्चाई के साथ कहता है, "इसे अवश्य बदलना चाहिये," वह देखता है कि वह एक प्रकार की आन्तरिक सूक्ष्मदर्शन-शक्ति प्राप्त कर रहा है, वह क्रमशः इस विषय में सचेतन होता जा रहा है कि दूसरों के अन्दर क्या चल रहा है, और जब वे बिलकुल वैसे नहीं होते जैसा कि वह उन्हें देखना चाहता है तो वह क्रोध से आग-बबूला होने के बदले यह समझना आरम्भ कर देता है कि चीज़ें कैसे घटित होती हैं, क्या कारण है कि मनुष्य "इस प्रकार का" है, प्रतिक्रियाएँ कैसे उत्पन्न होती हैं...। तब, ज्ञान से सन्तुष्ट होकर वह मुस्कुराता है। वह अब कोई कड़ी आलोचना नहीं करता, वह अपने अन्दर की या दूसरों के अन्दर की कठिनाई को, चाहे उसकी अभिव्यक्ति का केन्द्र कुछ भी क्यों न हो, दिव्य 'चेतना' को समर्पित कर देता है, और उसका रूपान्तर करने की प्रार्थना करता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४०२-०४

यदि मृत्यु के समय भी मुस्कुरा सको...

ऐसे लोग हैं जिन्होंने अपने शरीर पर अपने मन का ऐसा संयम प्राप्त कर लिया है कि वे कुछ भी अनुभव नहीं करते; उस दिन मैंने कुछ गुह्यवादियों के विषय में यही बात कही थी: यदि वे यह समझते हैं कि जो यातना उन्हें पहुँचायी जा रही है वह उन्हें एक क्षण में अपनी चेतना

के वर्तमान स्तरों को पार करने में और 'सिद्धि' प्राप्त करने, अपने सामने रखे हुए लक्ष्य को प्राप्त करने, भगवान् के साथ एकत्व प्राप्त करने के लिए उन्नति के एक साधन के रूप में सहायता करेगी तो फिर वे यातना का अनुभव बिलकुल नहीं करते। ऐसा लगता है मानों उनके शरीर पर मानसिक विचार की कलई चढ़ गयी हो। ऐसी बात बहुत बार घटित हो चुकी है; यह उन लोगों का बहुत सामान्य अनुभव रहा है जिनमें वास्तव में तीव्र धर्मानुराग रहा है। और आखिरकार, यदि मनुष्य को किसी-न-किसी कारणवश अपना शरीर छोड़ना और नया शरीर लेना ही हो तो क्या यह अधिक अच्छा नहीं है कि मृत्यु को कोई बीभत्स पराजय बनाने की जगह भव्य, हर्षयुक्त और उत्साहपूर्ण वस्तु बना दिया जाये? जो लोग जीवन से चिपके रहते हैं, जो एक या दो क्षण भी अपना अन्त रोक रखने के लिए प्रत्येक सम्भवनीय उपाय से चेष्टा करते हैं, जो तुम्हारे सामने भीषण वेदना का उदाहरण रखते हैं, वे यह प्रदर्शित करते हैं कि वे अपनी अन्तरात्मा के विषय में सचेतन नहीं हैं...। फिर भी, यह शायद एक साधन है, है न? मनुष्य इस घटना को एक साधन में बदल सकता है; यदि मनुष्य सचेतन हो तो वह, प्रत्येक चीज़ की तरह, मृत्यु को भी एक सुन्दर वस्तु, बहुत सुन्दर वस्तु बना सकता है। और ध्यान दो, जो लोग इससे नहीं डरते, जो बेचैन नहीं होते, जो बिना किसी मलिनता के मर सकते हैं, वे ऐसे लोग होते हैं जो कभी मृत्यु की बात नहीं सोचते, अपने सम्मुख उपस्थित इस "सन्त्रास" से हर समय घिरे नहीं रहते जिससे कि उन्हें अवश्य बचना है और जिसे वे अपने से जितनी दूर सम्भव हो उतनी दूर धकेलने की कोशिश भी करते हैं। ऐसे लोग जब अवसर उपस्थित होता है, अपना मस्तक उठा सकते और हँसते हुए कह सकते हैं कि "मैं यहाँ हूँ।"

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ४२४-२५

पीछे हटो और मुस्कुराओ

क्या तुम्हें सहज रूप से—बिना प्रयास के सहज रूप से—यह बोध हुआ है कि तुमने भूल की है? मैं यहाँ बाहरी प्रतिक्रिया की बात नहीं कह रही जो तुम्हें थप्पड़ मार कर अचानक जगाती है और तुम कह उठते हो : "आह! धिक्कार है, मैंने क्या कर डाला?" मैं उसकी बात नहीं कर

रही। जब तुम एक चीज़ करते हो, एक चीज़ का अनुभव करते हो, जब तुम एक बात कहते हो—उन मामूली छोटे-मोटे झगड़ों को ही ले लो, जैसे (कम-से-कम) एक दर्जन रोज़ मुझे सुनाये जाते हैं (मुझे आश्चर्य है कि तर्क-बुद्धि के होते हुए कोई ऐसी चीज़ों के बारे में कैसे झगड़ सकता है), हाँ, तो उस समय तुम ऐसे शब्द कहते हो जो नहीं कहने चाहियें, जो बिलकुल मूर्खतापूर्ण होते हैं, क्या उस समय तुम देख सकते हो कि तुम सचमुच मूर्ख हो—इससे बदतर नहीं कह रही—सहज रूप में देख सकते हो? तुम हमेशा सफ़ाई देते हो। तुम्हें हमेशा यह लगता है कि ग़लती दूसरे व्यक्ति की है, और तुम ठीक हो और यह कि सचमुच, उससे कह देना चाहिये कि वह ग़लत है, है न? वरना वह यह कभी न जान पायेगा! है न? मैं चीज़ को ज़रा ज़्यादा स्पष्ट करके रख रही हूँ, मानों वह एक छोटे-से सूक्ष्मदर्शी यन्त्र के सामने रखी हो ताकि वह कुछ बड़ी दिखायी दे। लेकिन बात है ऐसी ही। और जब तक चीज़ ऐसी है तब तक तुम सत्य चेतना से लाखों मील दूर हो। जब तक तुम तुरन्त, उसी क्षण पीछे न हट सको, अपने-आपको दूसरे की जगह पर रख कर यह न समझ सको कि उसे ऐसा क्यों लगता है, अपनी कमज़ोरी को न देख सको, दोनों की तुलना करके इस परिणाम पर न आ सको: "ओह! चीज़ ऐसी है, सच्ची बात यह है"—तो इसका मतलब यह है कि तुम अभी तक बहुत पीछे हो। जब तुम सहज भाव से तुरन्त यह कर सको, इसमें समय न लगे, यह एक स्वाभाविक गति हो, तब तुम सन्तुष्ट हो सकते हो कि तुमने थोड़ी-सी प्रगति की है...। ऐसा अनुभव तुम्हें दिन में कितनी बार होता है? भले खुल कर लड़ाई न हो, सिर में कितनी बार यह प्रतिक्रिया होती है, वहाँ सिर के अन्दर कोई चीज़ फुदकती है, समता की इस बुद्धिमत्ता की जगह, जो घटना के होने के समय ही उसे देखती है और समझती है कि चीज़ें कैसे और क्यों हो रही हैं, और देखती है इतने निर्वैयक्तिक रूप से कि वह हमेशा मुस्कुरा सके और कभी उग्र प्रतिक्रिया न करे—कभी नहीं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ७०-७१

हर्ष तब आता है जब तुम उचित वृत्ति अपनाओ। —श्रीमाँ

शत्रु पर मुस्कुराना

आपने कहा है : "शत्रु पर मुस्कुराना उसे निःशस्त्र कर देना है।" "मुस्कुराना" का क्या अर्थ है? शत्रु पर तो नहीं मुस्कुराना चाहिये!

नहीं मुस्कुराना चाहिये!... मैंने यहाँ जो बात कही है वह एक अनुभूति है। यह एक अनुभूति का आलेखन है जिसे मैंने सामान्य शब्दों में व्यक्त किया है। लेकिन अगर, किसी विशेष क्षण में, कोई अधिक-से-अधिक बुरे इरादों से आये और तुम उसके आगे मुस्कुरा दो तो वह पूरी तरह निःशस्त्र हो जाता है। उसके बाद वह कुछ भी नहीं कर सकता। लेकिन सच्चे, निष्कपट-भाव से मुस्कुराना चाहिये, केवल खीसें निपोरना या दाँत दिखाना और सोचना... *(हँसी),* मैं "मुस्कान" को सम्पूर्ण अर्थ में लेती हूँ, अर्थात्, अगर तुम पर्याप्त रूप में अपने स्वामी हो सको और वस्तुओं से ऊपर उठ जाओ, एक बहुत ऊँची चेतना में जाकर ऊपर से देख सको—तो जो सामान्य मानव चेतना को अत्यन्त भयावह और बहुत अधिक नाटकीय प्रतीत होता है उसे देख कर भी तुम उसी तरह मुस्कुरा सकते हो जैसे किसी बचकानी चीज़ पर। तो अगर तुम उस चेतना में हो जिसमें तुम हर चीज़ पर मुस्कुरा सकते हो (क्योंकि तुम हर चीज़ का कारण समझते हो और सभी चीज़ों में शक्तियों को काम करते हुए भी देखते हो), तुम अगर उस चेतना में हो, और जो कुछ घटे उस पर मुस्कुरा दो तो चीज़ें एकदम बदल जाती हैं। हाँ, यह ज़रा-सी, बाहरी या सामाजिक मुस्कान नहीं, चैत्य पुरुष की मुस्कान होनी चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ४०६-०७

'कृपा' सर्वत्र है

मैं पहले कई बार यह बात तुमलोगों से कह चुकी हूँ। जब तुम एक विशेष प्रकार की परिस्थितियों के बीच होते हो और कुछ घटनाएँ घटती हैं तो बहुधा ये घटनाएँ तुम्हारी इच्छा का या जो कुछ तुम्हें सर्वोत्तम प्रतीत होता है उसका प्रतिरोध करती हैं, और बहुधा तुम इसके लिए दुःखी होते हो और छोटी-बड़ी सभी वस्तुओं के लिए कहते हो : "आह! यदि यह दूसरी तरह हुआ होता, ऐसा या वैसा हुआ होता तो कितना अच्छा होता"...।

उसके बाद वर्ष-पर-वर्ष निकल जाते हैं, घटनाओं-पर-घटनाएँ होती हैं; तुम प्रगति करते हो, अधिक सचेतन बन जाते हो, पहले से ज़्यादा अच्छा समझने लगते हो, और जब तुम पीछे की ओर निहारते हो, तुम देखते हो —पहले तो अचम्भे के साथ, फिर बाद में एक मुस्कान के साथ—कि जो परिस्थितियाँ तुम्हें बिलकुल अनर्थकारी और प्रतिकूल प्रतीत हुई थीं वे ही ठीक-ठीक वही सर्वोत्तम चीज़ें थीं जो, उस समय तुम्हें जैसी उन्नति करनी थी उसे कराने के लिए, तुम्हारे साथ हो सकती थीं। और यदि तुम ज़रा भी समझदार होओ तो तुम अपने-आपसे कहते हो : "सचमुच भगवान् की 'कृपा' अनन्त है।"

अतएव, जब इस प्रकार की चीज़ अनेक बार तुम्हारे साथ हो चुकती है, तो तुम यह समझना आरम्भ कर देते हो कि मनुष्य की अन्धता और भ्रामक बाह्य रूपों के बावजूद भगवत्कृपा ही सर्वत्र कार्य कर रही है, जिससे कि प्रत्येक मुहूर्त, उन स्थितियों में जिनमें कि यह संसार उस मुहूर्त में होता है, सर्वोत्तम सम्भवनीय वस्तु ही होती है। चूँकि हमारी दृष्टि सीमित है अथवा इसलिए भी कि हम अपनी ही निजी अभिरुचियों के द्वारा अन्धे बने होते हैं, हम यह नहीं देख पाते कि चीज़ें इस प्रकार हैं।

परन्तु जब मनुष्य इसे देखना आरम्भ करता है तो वह ऐसे आश्चर्य में पड़ जाता है जिसका वर्णन कोई चीज़ नहीं कर सकती। क्योंकि बाह्य रूपों के पीछे मनुष्य इस 'कृपा' को देखता है—जो अनन्त, आश्चर्यमयी, सर्वशक्तिशाली है—जो सब कुछ जानती है, सब कुछ व्यवस्थित करती है, सब कुछ संयोजित करती है, और हमें—हम उसे चाहें या नहीं, हम उसे जानें या नहीं—परात्पर लक्ष्य की ओर, अर्थात् भगवान् के साथ एकत्व-प्राप्ति की ओर, परम देव की अभिज्ञता और उनके साथ एकत्व की ओर ले जाती है।

तब मनुष्य भगवत्कृपा के 'कार्य' और उसकी 'उपस्थिति' के अन्दर आनन्द से, आश्चर्य से भरपूर जीवन यापन करता है और एक अद्‌भुत शक्ति-सामर्थ्य का अनुभव करता है तथा उसके साथ-ही-साथ उसमें उसके प्रति एक ऐसा भरोसा होता है जो इतना शान्त-स्थिर, इतना पूर्ण होता है कि कोई चीज़ अब उसे हिला नहीं सकती।

और जब मनुष्य पूर्ण ग्रहणशीलता तथा पूर्ण अनुरक्ति की इस स्थिति

में होता है, वह उस हद तक भागवत कार्य के लिए संसार के प्रतिरोध को कम कर देता है; फलतः, वही है वह सर्वोपरि सहयोग जिसे मनुष्य भगवान् के कार्य में दे सकता है। मनुष्य तब समझता है कि भगवान् क्या चाहते हैं, और अपनी सम्पूर्ण चेतना के साथ 'उनकी इच्छा' का अनुसरण करता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३१०-११

सभी कुछ सद्भावनाभरी मुस्कान के साथ देखो

साधारणतः, प्रायः पूर्ण रूप में, जो चीज़ तुम्हें दूसरों के अन्दर बुरी लगती है वह ठीक वही चीज़ होती है जिसे तुम अपने अन्दर वहन करते हो, वह थोड़ी-बहुत परदे के पीछे, थोड़ी-बहुत छिपी हुई, सम्भवतः थोड़ा-सा भिन्न आकार लिये रहती है जिससे तुम अपने विषय में भ्रम में रहते हो। जब तक वह तुम्हारे अन्दर है तब तक तो तुम्हें खटकने वाली नहीं प्रतीत होती, पर ज्यों ही तुम उसे दूसरों में देखते हो त्यों ही वह भयानक बन जाती है।

इसे अनुभव करने की कोशिश करो, यह तुम्हें स्वयं अपने-आपको बदलने में बहुत, बहुत मदद देगा और साथ-ही-साथ, दूसरों के साथ तुम्हारे सम्बन्ध में तुम्हें एक हँसती हुई सहिष्णुता प्रदान करेगा, वह सदिच्छा प्रदान करेगा जो समझ से उत्पन्न होती है और वह बहुधा एकदम निरर्थक झगड़ों का अन्त कर देगी। तुम झगड़ा किये बिना जी सकते हो। ऐसा कहना बड़ा विचित्र-सा लगता है, क्योंकि, वस्तुएँ अभी जैसी हैं, उनके कारण, इसके विपरीत, ऐसा प्रतीत हो सकता है कि जीवन झगड़ा करने के लिए ही बना है, इस अर्थ में कि एक साथ रहने वाले लोगों का मुख्य कार्य होता है, खुले तौर पर या गुप्त रूप से झगड़ा करना। तुम हमेशा शब्दों तक नहीं उतर आते, न—सौभाग्यवश—हाथापाई तक उतरते हो, पर तुम्हारे अन्दर निरन्तर क्षुब्धता की स्थिति बनी रहती है क्योंकि तुम अपने चारों ओर उस पूर्णता को नहीं पाते जिसे तुम स्वयं उपलब्ध करना चाहते हो—किन्तु जिसे उपलब्ध करना कठिन अनुभव करते हो—पर तुम इसे एकदम स्वाभाविक समझते हो कि दूसरों को उसे उपलब्ध कर लेना चाहिये।

"वे भला ऐसे कैसे हो सकते हैं?..." तुम यह भूल जाते हो कि "वैसा" नहीं बनने में तुम अपने अन्दर कितनी कठिनाई का अनुभव करते हो!

कोशिश करो और तुम देखोगे!

प्रत्येक वस्तु को सद्भावनाभरी मुस्कान के साथ देखो, जो चीज़ें तुम्हें उत्तेजित, नाराज़ करती हैं उन्हें अपने लिए एक प्रकार की शिक्षा के रूप में ग्रहण करो और तब तुम अधिक शान्ति के साथ और अधिक प्रभावशाली रूप में जीवन यापन करोगे, क्योंकि इसमें कोई सन्देह नहीं कि मनुष्य जिस पूर्णता को स्वयं उपलब्ध करना चाहता है उसे दूसरों में न पाने के कारण होने वाली नाराज़गी और उत्तेजना में अपनी शक्ति का अधिकांश व्यर्थ नष्ट कर देता है।

दूसरों को जो पूर्णता प्राप्त करनी चाहिये वहाँ आकर तुम रुक जाते हो, और तुम बहुधा उस लक्ष्य के विषय में सचेतन नहीं होते जिसका अनुसरण स्वयं तुम्हें करना चाहिये। अगर तुम उसके विषय में सचेतन हो तो जो काम **तुम्हें** दिया गया है उसी से आरम्भ कर दो, अर्थात्, जो कुछ तुम्हें करना है उसे आरम्भ कर दो, दूसरे जो कुछ करते हैं उसमें व्यस्त हुए बिना, तुम्हें जो कुछ करना है उसे करो, क्योंकि, आख़िरकार, दूसरे जो कुछ करते हैं उससे तुम्हारा कोई सरोकार नहीं। और सच्चा मनोभाव ग्रहण करने का सबसे उत्तम उपाय है बस अपने-आपसे यह कहना: "मेरे इर्द-गिर्द जो भी हैं, मेरे जीवन की सारी परिस्थितियाँ, मेरे समीप जो हैं वे सभी वह आईना हैं जिसे दिव्य चेतना ने मेरे सम्मुख मुझे यह दिखाने के लिए रखा है कि मुझे कौन-कौन-सी प्रगति करनी चाहिये। जो कुछ मुझे दूसरों के अन्दर खटकता है वह वही कार्य है जिसे मुझे स्वयं अपने अन्दर करना है।" और सम्भवतः कोई व्यक्ति यदि स्वयं अपने अन्दर कोई सच्ची पूर्णता वहन करे तो वह अक्सर उसे दूसरों में भी देखेगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. २८-२९

भागवत कृपा के प्रभाव के कारण, अकस्मात्, एक आन्तरिक परदा फट सकता है और तुम यथार्थ सत्य के अन्दर तुरत प्रवेश कर सकते हो; परन्तु ऐसा जब होता है तब भी, यदि तुम उसका पूरा-पूरा मूल्य, महत्त्व और उसका पूर्ण प्रभाव प्राप्त करना चाहो तो तुम्हें अपने-आपको आन्तरिक ग्रहणशीलता की स्थिति में बनाये रखना होगा और उसके लिए दिन-प्रति-दिन अन्तर में पैठना अनिवार्य है। —*श्रीमाँ*

प्रफुल्लता

चैत्य प्रफुल्लता

प्रसन्न तथा प्रफुल्ल रहना—आध्यात्मिक रूप से इसमें कोई बुराई नहीं है, इसके विपरीत, यह तो उचित चीज़ है। रही बात संघर्षों तथा अभीप्सा की, तो प्रगति के लिए यह ज़रूरी नहीं है कि अनिवार्यतः तुम संघर्षों का सामना करो; कई तो ऐसे लोग हैं जो संघर्षमय मनोभाव के इतने आदी हो जाते हैं कि वे सारे समय संघर्ष में ही लगे रहते हैं, और किसी काम के लिए उन्हें समय ही नहीं मिलता! यह वाञ्छनीय नहीं है। एक है सूर्यालोकित पथ और दूसरा है अन्धकारमय, उदासी-भरा पथ—सूर्यालोकित पथ ही वह पथ है जिस पर तुम श्रीमाँ पर पूरा भरोसा रख कर आगे ही आगे बढ़ सकते हो, तब तुम न किसी से भय खाओगे, न किसी चीज़ से दुःखी होओगे। अभीप्सा की आवश्यकता है, लेकिन एक ऐसी सूर्यालोकित अभीप्सा हो सकती है जो प्रकाश तथा श्रद्धा, विश्वास तथा हर्ष से भरपूर हो। भले कठिनाइयाँ आयें, उनका सामना भी तुम मुस्कान के साथ कर सकोगे।

हम तुम्हारे अन्दर हमेशा प्रफुल्लता चाहते हैं। चैत्य की प्रसन्नता ने अपना रास्ता खोज निकाला है, और चाहे जैसी कठिनाइयाँ आयें, वह प्रसन्नता निश्चय ही तुम्हें आगे बढ़ाती हुई लक्ष्य तक पहुँचा देगी। जब साधक के अन्दर निरन्तर यह उत्फुल्लता हो तो हम जानते हैं कि उसने बुरी-से-बुरी बाधा पर भी विजय पा ली है और अब वह सुरक्षित पथ पर डटा हुआ है।

प्रफुल्लता *(मज़ाक करने और आमोद-प्रमोद की प्रसन्नता)* प्राणिक है। मैं यह नहीं कहता कि इसे नहीं होना चाहिये, लेकिन एक गभीरतर प्रफुल्लता होती है—*सुखहास्य*—जो प्रसन्नता की आध्यात्मिक अवस्था है।

आन्तरिक प्रसन्नता तथा प्रफुल्लता सहायक होती हैं, लेकिन यह *(छिछला मज़ाक)* सतह पर बस प्राणिक बुदबुदाहट होता है। सामान्य जीवन में यह चीज़ ठीक है, लेकिन योग में यह व्यर्थ में प्राणिक शक्ति को खर्च करना है।

CWSA खण्ड ३१, पृ. १७३-७४ —श्रीअरविन्द

बाधाओं के बीच प्रसन्नता बनाये रखो

बहुत-सी चीज़ें मार्ग पर घटित होती हैं। सहसा हम सोचते हैं कि हमने एक बाधा पार कर ली है; मैं कहती हूँ "सोचते हैं", क्योंकि यद्यपि हम उसे पार कर जाते हैं, पर हम उसे सम्पूर्ण रूप से पार नहीं करते। मैं एक बहुत स्पष्ट उदाहरण, एक बहुत सामान्य निरीक्षण का उदाहरण दे रही हूँ। किसी व्यक्ति को यह पता लगता है कि उसका प्राण अदमनीय और अनियन्त्रित है, वह अकारण और अनावश्यक रूप से लाल-पीला हो जाता है। वह अपने प्राण को इस प्रकार बह न जाने की, आग-बबूला न होने की, शान्त-स्थिर बने रहने और जीवन के आघातों को बिना तीव्र प्रतिक्रिया के सहने की शिक्षा देना आरम्भ कर देता है। यदि मनुष्य इसे हँसते हुए करता है तो यह कार्य काफ़ी तेज़ी से आगे बढ़ता है (इस बात को अच्छी तरह ध्यान में रखो, यह बहुत आवश्यक है : जब तुम्हें अपने प्राण के साथ निपटना हो तो ख़ूब सावधानी से अपनी प्रसन्नता को बनाये रखो, नहीं तो तुम मुसीबत में पड़ जाओगे)। मनुष्य अपनी ख़ुशमिज़ाजी को बनाये रखता है और जब वह क्रोध को उठते हुए देखता है हँसना आरम्भ कर देता है। अवसन्न हो जाने और यह कहने की बजाय कि "आह! मेरे समस्त प्रयास के बावजूद यह सब कुछ फिर से आरम्भ कर रहा है," मनुष्य हँसना आरम्भ कर देता है और कहता है, "अच्छा, अच्छा! अभी भी इसका अन्त नहीं हुआ है। अब देखो, क्या तुम हास्यास्पद नहीं हो, तुम एकदम अच्छी तरह जानते हो कि तुम हास्यास्पद बन रहे हो! क्या क्रोध करना उचित है?" मनुष्य उसे प्रसन्नचित्त होकर यह पाठ पढ़ाता है। और, यथार्थ में, कुछ समय बाद वह फिर क्रुद्ध नहीं होता, वह शान्त रहता है—और मनुष्य उस तरफ़ उतना ध्यान नहीं देता। वह समझता है कि कठिनाई जीत ली गयी है, वह समझता है कि आख़िरकार परिणाम प्राप्त हो गया है : "मेरा प्राण अब मुझे परेशान नहीं करता, अब वह कुपित नहीं होता, सब कुछ सुन्दर ढंग से चल रहा है।" और दूसरे दिन, वह क्रोध से अभिभूत हो जाता है। उस समय मनुष्य को सतर्क रहना चाहिये, उसे यह नहीं कहना चाहिये, "यही हैं हम, इससे कोई लाभ नहीं, मैं कभी कोई चीज़ उपलब्ध नहीं करूँगा, मेरे सभी प्रयत्न निष्फल हैं; यह सब एक भ्रम है, यह असम्भव है।" इसके विपरीत, मनुष्य को कहना चाहिये, "मैं पर्याप्त रूप से सजग नहीं था।" मनुष्य को दीर्घकाल

तक, बहुत दीर्घकाल तक प्रतीक्षा करनी चाहिये, उसके बाद ही वह कह सकता है, "आह! यह सम्पन्न और समाप्त हो गया।" कभी-कभी मनुष्य को वर्षों, अनेक वर्षों तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है...।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. २९७-९८

आन्तरिक मुदित भाव बनाये रखो

साधारणतया, एक ओर की गयी सारी प्रगति दूसरी ओर से विरोधी शक्तियों के आक्रमण से तिरोहित हो जाती है। अतएव, मनुष्य जितनी ही अधिक प्रगति करे उतना ही अधिक उसे सावधान रहना चाहिये। और सबसे बढ़ कर आवश्यक गुण है लगन, सहिष्णुता, और... एक प्रकार का आन्तरिक प्रसन्न-भाव जो निरुत्साहित न होने में, उदास न होने में और मुस्कुराहट के साथ सभी कठिनाइयों का सामना करने में तुम्हारा सहायक होता है। अंग्रेज़ी में एक शब्द है जो इस भाव को अच्छी तरह व्यक्त करता है और वह है, 'चियरफ़ुलनेस' यानी प्रसन्नचित्तता। यदि तुम इसे अपने अन्दर बनाये रखो तो तुम उन सब बुरे प्रभावों के साथ, जो तुम्हें प्रगति करने से रोकने का प्रयास करते हैं, प्रकाश के अन्दर, बहुत अच्छे ढंग से लड़ सकते हो, उनका अधिक अच्छी तरह से विरोध कर सकते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. २८

प्रफुल्लता

(श्रीमाँ द्वारा दिया गया पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ)

प्रकृति की आह्लादपूर्ण मुस्कान

"लो, ये रहे फूल और आशीर्वाद! यह है दिव्य प्रेम की मुस्कान! इसमें कोई पसन्द और नापसन्द नहीं है। यह सभी की ओर उदार प्रवाह में उमड़ती है और कभी अपने अद्‌भुत उपहारों को वापिस नहीं लेती!"

शाश्वत माँ परमानन्द की मुद्रा में बाँहें फैलाये हुए, जगत् पर निरन्तर अपने शुद्धतम प्रेम की ओस बरसा रही हैं!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. २०७

अपनी मुस्कान को बनाये रखो

क्रोध हमेशा दुर्बलता का चिह्न होता है

बेचैनी, उग्रता, क्रोध, ये सभी चीज़ें हमेशा, बिना अपवाद के, दुर्बलता की सूचक हैं। और विशेष रूप से, जब व्यक्ति अपनी भाषा में बह जाता है और ऐसी चीज़ें कहता है जो नहीं कहनी चाहियें तो **यह** निश्चय ही भयंकर मानसिक दुर्बलता का चिह्न है—मानसिक और प्राणिक—भयंकर। अन्यथा, तुम दुनिया-भर की गाली-गलौज़ सुन सकते हो, लोग तुमसे सब तरह की बेवकूफ़ी-भरी बातें कह सकते हैं; अगर तुम कमज़ोर नहीं हो तो शायद तुम बाहर से न भी मुस्कुराओ, क्योंकि मुस्कुराना हमेशा सुरुचिपूर्ण नहीं होता, लेकिन अपने अन्दर की गहराई में तुम मुस्कुराते रहोगे और उसे गुज़र जाने दोगे, वह तुम्हें छू तक न पायेगी...। अगर तुम्हारे मन ने, जैसा यहाँ कहा गया है, वैसे शान्त-स्थिर होने की आदत डाल ली है, और तुम्हें अपने अन्दर सत्य का बोध प्राप्त है, तो तुम कुछ भी सुन सकते हो। उससे स्पन्दन जैसी कोई भी चीज़ नहीं पैदा होती—तुम्हारे अन्दर सब कुछ अचञ्चल, स्थिर, शान्त रहता है। और तब अगर वह साक्षी वहाँ हो, जिसकी हम थोड़ी देर पहले बात कर रहे थे, और इस हास्यजनक स्थिति को देख रहा हो, तो वह निश्चय ही मुस्कुराता है।

लेकिन अगर तुम उस दूसरे व्यक्ति से आते हुए स्पन्दनों का अनुभव करो जो तुम्हारे अन्दर अपना समस्त क्रोध और उग्रता फेंक रहा है, अगर तुम उसे अनुभव करो... शुरू में ऐसा होता है... और फिर, तुम्हारे अन्दर से अचानक प्रत्युत्तर उठता है; और फिर, यदि तुम स्वयं क्रुद्ध हो उठते हो तो विश्वास रखो, तुम भी उसी की तरह कमज़ोर हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ४२१

छोटी-सी बात का बतंगड़ नहीं बनाना चाहिये

... यदि तुम अमुक विषय पर यथार्थ, ठोस, स्पष्ट, निश्चित विचार करने में सफल होना चाहो तो तुम्हें उसके लिए प्रयास करना होगा, अपने-आपको एकत्र करना होगा, अपने-आपको स्थिर करना होगा, एकाग्र होना होगा। और जब तुम पहली बार इसे करते हो तो यह अक्षरशः चोट पहुँचाता

है, थका देता है! परन्तु तुम यदि इसका अभ्यास न डालो तो सारे जीवन तुम एक दोलायमान स्थिति में निवास करोगे। और जब तुम्हारे मन के सामने व्यावहारिक बातें आयेंगी, जब वे बातें तुम्हारे सम्मुख उपस्थित होंगी —क्योंकि सब कुछ के बावजूद, मनुष्य के सामने सर्वदा कुछ समस्याएँ उपस्थित होती ही हैं—जिन्हें हल करना होता है, जो बिलकुल व्यावहारिक ढंग की होती हैं, हाँ, तब तुम समस्या के सभी पहलुओं को समझने, उन्हें पास-पास रखने, प्रश्न को सभी दृष्टिकोणों से देखने, और फिर उससे ऊपर उठ कर समाधान देखने में समर्थ नहीं होओगे, उसके बदले तुम किसी धुँधली और अनिश्चित वस्तु के चक्कर में उछलने-गिरने लगोगे, और तुम्हें ऐसा लगेगा कि कितने सारे मकड़े तुम्हारे मस्तिष्क में चारों ओर दौड़ रहे हैं—परन्तु तुम उस चीज़ को पकड़ने में सफल नहीं होओगे।

मैं सबसे सरल समस्याओं की बात कर रही हूँ, समझे; मैं संसार या मानवता के भाग्य के निर्णय करने की, यहाँ तक कि किसी देश के भाग्य का निर्णय करने की बात नहीं कर रही—उस प्रकार की एकदम किसी बात की चर्चा नहीं कर रही। मैं तुम्हारे दैनिक जीवन की, प्रतिदिन की समस्याओं की चर्चा कर रही हूँ। वे एकदम धुँधली-सी वस्तु बन जाती हैं।

हाँ, बस इसी चीज़ से बचने के लिए, जब तुम्हारा मस्तिष्क बनने की अवस्था में होता है, तुमसे यह कहा जाता है: इसे ऐसी आदतों और अभ्यासों के द्वारा निर्मित होने देने के बदले, अपने मस्तिष्क को थोड़ी यथार्थता, सुनिश्चितता तथा एकाग्र होने, चुनाव करने, निर्णय करने, वस्तुओं को क्रम में रखने की क्षमता प्रदान करने की चेष्टा करो, अपनी तर्क-बुद्धि का प्रयोग करने का प्रयास करो।

निस्सन्देह, यह बात सुपरिचित है कि तर्क-बुद्धि ही मनुष्य की सर्वोपरि क्षमता नहीं है और उसका अतिक्रमण अवश्य करना चाहिये, फिर भी यह बात भी उतनी ही स्पष्ट है कि यदि तुम्हारे अन्दर तर्क-बुद्धि नहीं है तो तुम एक प्रकार का पूर्णतः असम्बद्ध जीवन यापन करोगे, तुम्हें यह भी नहीं मालूम होगा कि युक्तिसंगत ढंग से कैसे व्यवहार किया जाता है। छोटी-से-छोटी बात भी तुम्हें पूरी तरह परेशान कर देगी, और तुम्हें यह भी पता नहीं चलेगा कि ऐसा क्यों हुआ, और उससे भी ज़्यादा यह नहीं मालूम होगा कि इसका उपाय क्या है। जब कि वह व्यक्ति, जिसने अपने

अन्दर सक्रिय, सुस्पष्ट विचार की एक स्थिति को स्थापित कर लिया है, सभी प्रकार के आक्रमणों का, भावात्मक आक्रमणों का अथवा किसी भी प्रकार की परीक्षाओं का सामना कर सकता है; क्योंकि जीवन इन सब चीज़ों से—अप्रिय चीज़ों, मामूली कष्टों, परेशानियों से—पूरी तरह भरा हुआ है, जो हैं तो छोटी, पर होती हैं अनुभव करने वाले के अनुपात में, और इसलिए स्वभावतः ही वे उसे बहुत बड़ी अनुभूत होती हैं क्योंकि वे उसके अनुपात में होती हैं। हाँ तो, बुद्धि कुछ दूर पीछे अवस्थित हो सकती है, उस सबका निरीक्षण कर सकती, मुस्कुरा सकती और कह सकती है : "ओह! नहीं, एक इतनी छोटी-सी बात का बतंगड़ नहीं बनाना चाहिये।"

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. २१९-२१

स्वाधीनता और प्रेम

स्वाधीनता!... मुझे याद है मैंने एक ज्ञानी वृद्ध गुह्यवेत्ता को यह सुन्दर उत्तर देते सुना था, उनसे किसी ने कहा था : "मैं स्वाधीन रहना चाहता हूँ! मैं स्वाधीन प्राणी हूँ! मेरा अस्तित्व तभी है जब मैं स्वाधीन होऊँ!" और उन्होंने मुस्कुराहट के साथ उत्तर दिया था : "इसका मतलब हुआ कि तुमसे कोई प्यार नहीं करेगा, क्योंकि यदि तुमसे कोई प्रेम करे तो तुम तुरन्त उसके प्रेम के अधीन हो जाओगे।"

यह एक सुन्दर उत्तर है, क्योंकि वस्तुतः प्रेम ही 'एकता' की ओर ले जाता है और यह 'एकता' ही स्वतन्त्रता की सच्ची अभिव्यक्ति है। जो स्वतन्त्रता के नाम पर उच्छृंखलता का दावा करते हैं वे इस सच्ची स्वतन्त्रता की ओर से पूरी तरह पीठ फेर लेते हैं, क्योंकि वे प्रेम से इन्कार करते हैं।

विकृति आती है ज़बर्दस्ती करने से। कोई बाध्य होकर प्रेम नहीं कर सकता। किसी को प्रेम करने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता—तब वह प्रेम नहीं रह जाता। इसलिए जैसे ही बाध्यता बीच में आती है, वह मिथ्यात्व बन जाता है। आन्तरिक सत्ता की सभी क्रियाएँ सहज-स्वाभाविक क्रियाएँ होनी चाहियें—ऐसी सहज-स्वाभाविकता जो आन्तरिक सामञ्जस्य से, सहानुभूतिपूर्ण समझ से—स्वेच्छा से किये गये आत्मदान से—गभीरतर सत्य की ओर, सत्ता के सच्चे स्वरूप, हमारे 'स्रोत' और 'उद्देश्य' की ओर वापस मुड़ने से आती है। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ५६-५७

निर्णायक मुक्ति

... यदि कोई इस पथ पर आगे बढ़ना चाहता है तो उसे पहले बड़ी विनम्रता से इस नवजन्म की राह पर चल पड़ना चाहिये, और अतिमानसिक अनुभूतियाँ प्राप्त कर सकने के भ्रम को पोसने के पहले आत्मा का साक्षात्कार करना चाहिये।

तुम्हें दिलासा देने के लिए मैं इतना कह सकती हूँ कि तुम्हारे इस समय धरती पर जीने के तथ्य-भर से—चाहे तुम इसके बारे में सचेतन होओ या नहीं, चाहे तुम इसे चाहो या नहीं—तुम हर साँस के साथ इस नये अतिमानसिक तत्त्व को आत्मसात् कर रहे हो जो इस समय पार्थिव वायुमण्डल में फैल रहा है। और वह तुम्हारे अन्दर उन वस्तुओं को तैयार कर रहा है जो तुम्हारे निर्णायक क़दम उठाते ही **एकदम एकाएक** अभिव्यक्त हो जायेंगी।

यह तुम्हें निर्णायक क़दम उठाने में मदद करेगा या नहीं, यह दूसरी बात है जिसका अध्ययन करना बाक़ी है, क्योंकि जो अनुभूतियाँ हो रही हैं, और जो अब बार-बार होंगी, वे बिलकुल नये ढंग की होंगी, क्या होने जा रहा है यह पहले से ही नहीं जाना जा सकता; अध्ययन करना होगा, और गहरे अध्ययन के बाद ही निश्चय के साथ कहा जा सकेगा कि यह अतिमानसिक तत्त्व नवजन्म के कार्य को आसान बनायेगा या नहीं...। मैं तुम्हें इसके बारे में कुछ समय बाद बताऊँगी। फ़िलहाल, अधिक अच्छा होगा कि इन वस्तुओं पर निर्भर न रहो और सहज रूप से आध्यात्मिक जीवन में जन्म लेने के मार्ग पर चल पड़ो।

जब तुम वहाँ तक पहुँच जाओगे तब वे सारे प्रश्न जो तुम्हारे अन्दर उठते हैं, या तुम मुझसे पूछते हो, हल हो जायेंगे।

जो भी हो, जीवन के प्रति तुम्हारी वृत्ति **इतनी** भिन्न हो जायेगी कि तुम यह समझने लगोगे कि आध्यात्मिक रूप से जीने का क्या मतलब होता है। और तब, तुम एक **बड़ी** चीज़ भी समझ जाओगे, बहुत बड़ी चीज़, कि बिना अहं के कैसे जिया जा सकता है।

तब तक उसे कोई नहीं समझ सकता। सारा जीवन अहं पर इतना अधिक निर्भर है कि लगता है कि अहं में या अहं के बिना जीना या कुछ करना नितान्त असम्भव है। पर इस नवजन्म के बाद तुम मुस्कुराते हुए

अहं को देख सकते हो और उससे कह सकते हो : "मेरे दोस्त, अब मुझे तुम्हारी कोई ज़रूरत नहीं रही!"

यह भी उन परिणामों में से एक परिणाम है जो तुम्हें मुक्ति की काफ़ी निश्चयात्मक अनुभूति प्रदान करता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ३६७-६८

अवसाद के लिए दरवाज़ा मत खोलना

तुम्हारे अन्दर प्रबल इच्छा-शक्ति की ज़रूरत नहीं है—तुम्हें केवल मेरी इच्छा का उपयोग करना है।

बच्ची, बहुत सावधान रहो। अवसाद, अनुत्साह और विद्रोह के लिए दरवाज़ा न खोलो—यह तुम्हें चेतना से दूर, बहुत दूर ले जाकर अन्धकार की गहराइयों में डुबो देता है जहाँ सुख कभी प्रवेश भी नहीं पा सकता। मुस्कान ही तुम्हारी सबसे बड़ी शक्ति थी; क्योंकि तुम जीवन पर मुस्कुराना जानती थीं, साथ ही तुम साहस और स्थिरता से काम करना भी जानती थीं और इसमें तुम अपवाद-रूप थीं। लेकिन तुमने और लोगों के उदाहरण का अनुसरण करना सीख लिया, तुमने उनसे असन्तुष्ट, विद्रोही, अवसादग्रस्त होना सीखा और अब तुमने अपनी मुस्कान को भी खिसक जाने दिया, और साथ ही मेरे ऊपर विश्वास और श्रद्धा को भी। इस स्थिति में अगर सभी दिव्य शक्तियाँ तुम्हारे ऊपर केन्द्रित हो जायें तो भी बेकार होंगी—तुम उन्हें ग्रहण करने से इन्कार कर दोगी।

इलाज एक ही है, और तुम्हें उसे स्वीकार करने में देर न लगानी चाहिये; अपनी मुस्कान को वापिस ले आओ, अपनी श्रद्धा को वापिस ले आओ, फिर से वही विश्वस्त बालिका बन जाओ जो तुम थीं, अपने दोषों और कठिनाइयों के बारे में ही सोचती न रह जाओ—तुम्हारी मुस्कान उन सबको भगा देगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ७७

प्राण का परिवर्तन

अग्नि के प्रभाव से तुम्हारे प्राण के परिवर्तन का एक और विशेष लक्षण यह है कि तुम हँसते-हँसते कठिनाइयों और बाधाओं का सामना

कर सकते हो। तुम अपनी भूलों के लिए टाट ओढ़ कर, भभूत लगा कर रोने-धोने नहीं बैठ जाते, या इसी क्षण उच्च स्तर तक न पहुँच पाने के कारण एकदम हतोत्साह नहीं हो जाते। तुम खिन्नता को एक मुस्कान से ही भगा देते हो। तुम्हारे लिए सौ भूलों का भी बहुत महत्त्व नहीं होता: एक मुस्कान के साथ तुम पहचान लेते हो कि तुमने भूल की है और मुस्कान के साथ ही यह निश्चय कर लेते हो कि भविष्य में यह मूर्खता फिर से नहीं दोहरायी जायेगी। सभी खिन्नता और विषाद को विरोधी शक्तियाँ ही पैदा करती हैं, उन्हें तुम्हारे ऊपर उदासी फेंक कर जितनी खुशी होती है उतनी और किसी चीज़ से नहीं होती। नम्रता एक चीज़ है और खिन्नता दूसरी ही चीज़। नम्रता एक दिव्य गति है और खिन्नता है अन्धकारमयी शक्तियों की बहुत ही अनगढ़ अभिव्यक्ति। इसलिए अपनी कठिनाइयों का प्रसन्नता के साथ सामना करो, निरन्तर प्रसन्नता के साथ रूपान्तर के मार्ग में आने वाली बाधाओं का मुकाबला करो। दुश्मन को खदेड़ने का सबसे अच्छा तरीक़ा है उसके मुँह पर हँसना! तुम उसके साथ कई-कई दिनों तक भिड़ते और टकराते रहो और उसकी शक्ति ज़रा भी कम होती हुई न दीखेगी; बस एक बार उसके सामने हँस दो और वह दुम दबा कर भाग जायेगा! आत्मविश्वास से और भगवान् पर श्रद्धा से भरी हँसी दुश्मन को सबसे अधिक तहस-नहस कर देने वाली शक्ति है—वह शत्रु के मोर्चे को तोड़ देती है, उसकी सेनाओं में खलबली मचा देती है और तुम्हें विजयी के रूप में आगे बढ़ाती है।

परिवर्तित प्राण सिद्धि पाने की प्रक्रिया में आनन्द का अनुभव करता है। वह इस प्रक्रिया में आने वाली कठिनाइयों को बड़े उत्साह के साथ स्वीकार करता है। वह सबसे अधिक प्रसन्न तब होता है जब उसे 'सत्य' के दर्शन कराये जायें और उसकी निम्न प्रकृति में मिथ्यात्व के खेल को खोल कर सामने रख दिया जाये। वह योग पीठ पर भारी बोझ ढोने के रूप में नहीं, बल्कि एक आनन्ददायक कार्य के रूप में करता है। वह ख़ुशी-ख़ुशी अधिक-से-अधिक सहने के लिए तैयार रहता है यदि यह सहना रूपान्तर की शर्त हो। वह बिना शिकायत किये, बिना बुड़बुड़ाये, ख़ुशी से सब कुछ सहता है क्योंकि यह सहना भगवान् के लिए है। उसे अटल विश्वास होता है कि विजय प्राप्त होगी ही। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १५३-५४

बाहर निकलने का एकमात्र उपाय

वे सभी जो पीड़ित हैं, उनसे यही एक बात कहनी चाहिये : समस्त दुःख इस बात का सूचक है कि समर्पण समग्र नहीं है। तो जब तुम अपने अन्दर इस तरह के "प्रहार" का अनुभव करो तो यह कहने की बजाय, "ओह, यह खराब है" या "यह परिस्थिति कठिन है", तुम यह कहो, "मेरा समर्पण पूर्ण नहीं है," तो यह ठीक होगा। और फिर तुम उस परम कृपा का अनुभव करोगे जो तुम्हारी सहायता करती है, जो तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करती है और तुम आगे बढ़ते चले जाते हो। और फिर एक दिन तुम उस शान्ति में उभर आते हो जिसे कुछ भी विचलित नहीं कर सकता। तुम सभी प्रतिरोधी शक्तियों, प्रतिरोधी गतिविधियों, प्रहारों, ग़लतफ़हमियों, दुर्भावनाओं का उत्तर उसी मुस्कान के साथ देते हो जो 'भागवत कृपा' में पूर्ण विश्वास से आती है। और बचने का यही **एकमात्र** तरीका है, कोई दूसरा नहीं है।

यह जगत् संघर्ष, दुःख-दर्द, कठिनाइयों, तनावों का जगत् है; यह इन्हीं से बना है। यह अभी तक बदला नहीं है, बदलने में कुछ समय लगेगा। और हर एक के लिए बाहर निकलने की सम्भावना है। अगर तुम भागवत कृपा की उपस्थिति का सहारा लो, तो बाहर निकलने का यही **एकमात्र** उपाय है। —'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ४४१-४२

योगी का मनोभाव

जब तुम भगवान् के पास जाते हो तो तुम्हें समस्त मानसिक धारणाओं को त्याग देना चाहिये; किन्तु, इसके बदले तुम अपनी धारणाओं को भगवान् पर लादना चाहते हो और चाहते हो कि वे उनका अनुसरण करें। योगी के लिए सच्चा मनोभाव तो केवल यही है कि वह नमनशील हो और भगवान् की ओर से जो भी आदेश मिले उसका पालन करने के लिए तैयार रहे; उसके लिए कुछ भी अनिवार्य न हो और न ही उसे कोई चीज़ भार लगे। अक्सर जो लोग आध्यात्मिक जीवन बिताना चाहते हैं उनका पहला आवेश यही होता है कि उनके पास जो कुछ हो उसे फेंक दें; किन्तु वे ऐसा करते हैं एक बोझ से छुटकारा पा जाने के लिए, भगवान् के अर्पण करने के लिए नहीं। जिनके पास धन है तथा जिनके इर्द-गिर्द अमीरी और भोग की सामग्रियाँ हैं, वे जब भगवान् की ओर मुड़ते हैं तो तुरत उनकी प्रवृत्ति

इन सब चीज़ों से दूर भागने की होती है—अथवा, जैसा कि वे कहते हैं : "इनके बन्धन से बच निकलने" की होती है। परन्तु यह ग़लत प्रवृत्ति है; तुम्हें यह कभी नहीं सोचना चाहिये कि जो चीज़ें तुम्हारे पास हैं वे तुम्हारी हैं—वे तो भगवान् की हैं। यदि भगवान् चाहते हैं कि तुम किसी चीज़ का भोग करो तो भोग कर लो; किन्तु दूसरे ही क्षण, यदि उसे छोड़ना पड़े तो उसके लिए भी प्रसन्नचित्त तैयार रहो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ६२-६३

यदि तुम अपने मन को दस मिनट तक गहराई से देखो तो तुम्हें पता लगेगा कि दस में से नौ विचार भय से भरे हुए हैं।... समस्त भय से मुक्ति अनवरत प्रयास और साधना द्वारा ही सम्भव है।

साधना और प्रयास के द्वारा यदि तुमने अपने मन और प्राण को आशंका तथा भय से मुक्त कर भी लिया तो भी शरीर को मना लेना अधिक कठिन होता है। परन्तु यह करना भी ज़रूरी है। एक बार जब तुम योग-मार्ग में प्रवेश करते हो तो तुम्हें समस्त भयों से मुक्त हो जाना चाहिये—अपने मन के भयों से, अपने प्राण के भयों से, एक-एक कोषाणु तक में भरे शरीर के भयों से मुक्त होना चाहिये। योग-मार्ग में तुम्हें जो ठोकरें खानी पड़ती हैं और आघात सहने पड़ते हैं उनका एक उपयोग यह भी है कि वे तुम्हें समस्त भयों से मुक्त कर दें। भय के कारण उस समय तक तुम पर बारम्बार हमला करते रहते हैं जब तक तुम इस योग्य न हो जाओ कि उनके सामने स्वतन्त्र, उदासीन, अछूते और शुद्ध होकर खड़े रह सको। किसी को समुद्र का भय होता है, कोई आग से डरता है। हो सकता है कि जो व्यक्ति अग्नि से डरता है उसे एक के बाद एक अनेकों भीषण अग्निकाण्डों का सामना करना पड़े, यहाँ तक कि वह इतना अभ्यस्त हो जाये कि इस काण्ड से उसके शरीर का एक भी कोषाणु तक न काँपे। जिस चीज़ से तुम्हारे अन्दर त्रास पैदा होता हो वह उस समय तक बारम्बार आती रहती है जब तक कि त्रास बिलकुल बन्द न हो जाये। जो रूपान्तरित होना चाहता है और जो इस योग-मार्ग का साधक है उसे पूरी तरह से भयमुक्त होना ही पड़ेगा, उसे ऐसा बनना पड़ेगा कि कोई, किसी प्रकार की चीज़ उसे उसकी प्रकृति के किसी भी भाग में छू या हिला न सके। —*श्रीमाँ*

श्रीअरविन्द हमसे कहते हैं कि सभी परिस्थितियों में प्रेम को विकीरित करते रहना ही देवत्व का लक्षण है, वह उसे भी प्यार करता है जो उस पर प्रहार करता है और उसे भी जो उसकी उपासना करता है—कैसा पाठ है यह मानवजाति के लिए!

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ३४४

शाश्वत की मुस्कान

निश्चलता की मुस्कान

तुम जानते हो, जब मैं देखना शुरू करती हूँ *(श्रीमाँ अपनी आँखें बन्द कर लेती हैं)*, तो दो चीज़ें एक साथ घटित होती हैं : वह मुस्कान, वह आनन्द, वह हास्य, और... वह शान्ति! ओह सचमुच वह शान्ति... कितनी भरपूर, ज्योतिर्मयी शान्ति... सम्पूर्ण शान्ति : कोई संघर्ष नहीं, कोई विरोध नहीं। बस एक ज्योतिर्मय सामञ्जस्य... लेकिन फिर भी वहाँ वह सब भी है जिसे हम प्रमाद, दुःख-दर्द, क्लेश कहते हैं; वह सब भी वहाँ है। उसके बिना संसार नहीं है...।

(लम्बा मौन)

बस मैं इतना कहना चाहूँगी कि अगर तुम सचमुच इस दुःख-दर्द से बाहर निकलना चाहो तो वास्तव में ऐसा करना इतना मुश्किल भी नहीं है : सब कुछ परम प्रभु के हाथों सौंप देने के अलावा और कुछ नहीं करना है। और वे सब कर लेंगे। वे ही सब कुछ करते हैं... कितना अद्‌भुत है सब कुछ! कितना अद्‌भुत!

जो भी उनकी ओर खुला हो वे उसे अपनी शरण में ले लेते हैं, भले मनुष्यों की भाषा में वह सामान्य बुद्धिवाला मनुष्य हो, और फिर वे तुम्हें यह दिखलाते हैं कि अपनी उस तथाकथित बुद्धि को तुम कैसे परे सरका सकते हो, बस तुम्हें उससे इतना भर कहना होता है : "तो तुम, अब शान्त बैठो, हिलो-डुलो मत, मुझे तंग मत करो; मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं है।" और फिर तुम्हारे सामने एक द्वार खुलता है—तुम्हें यह भी अनुभव नहीं होता कि तुम्हें उसे धकेलना है; वह तुम्हारे सामने पूरा-पूरा खुला होता है और तुम्हें दरवाज़े की दूसरी तरफ़ हाथ पकड़ कर ले जाया जाता है। कोई 'और' यह सब तुम्हारे लिए कर देता है, तुम स्वयं नहीं करते। और फिर... इस तरफ़ पलट कर आना तुम्हारे लिए असम्भव हो जाता है।

ओह, यह सब भयावह परिश्रम, मन का यह प्रयास... सचमुच समझ में नहीं आता।

यह संघर्ष, अपने-आपको सिरदर्द देना—ओह!... पूरी तरह से निरर्थक है, एकदम से निरर्थक। ये संघर्ष और कहीं नहीं, बस अधिकाधिक तनाव

की ओर ही ले जाते हैं।

जब तुम स्वयं को किसी तथाकथित समस्या के सामने पाओ : "मुझे क्या कहना चाहिये? मुझे क्या करना चाहिये? मुझे कैसे व्यवहार करना चाहिये?"... तब तुम्हें कुछ नहीं करना है! परम प्रभु से यह कहने के सिवाय और कुछ नहीं करना है कि, "आप देख रहे हैं न, परिस्थिति यह है।" बस इतना ही। फिर एकदम, पूरी तरह से निश्चल बने रहो। उसके बाद तुम देखोगे कि बिलकुल सहज रूप से, उसके बारे में सोचे बिना, अधिक चिन्तन किये बिना, कुछ भी किये बिना, बिना किसी प्रयास के... तुम ठीक वही करते हो जो तुम्हें करना चाहिये। लेकिन तब सचमुच तुम नहीं, परम प्रभु ही सब कुछ करते हैं। वे ही कार्य करते हैं, वे ही परिस्थितियाँ जुटाते हैं, वे ही ठीक लोगों को तुम्हारे सामने ले आते हैं, वे ही तुम्हारी जिह्वा पर या तुम्हारे क़लम की नोक पर शब्द रख देते हैं—सब, सब, सब कुछ, सभी कुछ वे करते हैं, तब तुम्हें और कुछ नहीं करना होता है, परमानन्द में जीने के सिवाय तुम्हें और कुछ नहीं करना होता है।

अब मुझे इस बात का विश्वास हो चला है कि सचमुच मनुष्य ऐसा जीवन जीना नहीं चाहते!

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से १५ मई १९६५

प्रश्न : पिछले दिनों इतनी अधिक समस्याएँ मेरे सामने रही हैं। पता नहीं, उन्हें हँसी-ख़ुशी कैसे हल किया जाये?

उत्तर : 'स्थायी' और 'सच्चा' सुख पाने का एकमात्र उपाय है, 'भागवत कृपा' पर पूर्ण और ऐकान्तिक निर्भरता।

अगर हम अपने सुख को अक्षुण्ण और पवित्र रखना चाहें तो हमें उसकी ओर प्रतिकूल विचारों को आकर्षित न करने पर पूरा ध्यान देना चाहिये।

हमेशा सुखी रहना, मेघविहीन और उतार-चढ़ावरहित सुख—अन्य सभी चीज़ों की अपेक्षा इसे पाना सबसे ज़्यादा कठिन है। —श्रीमाँ

आवश्यकता के समय वे हमारी माँ हैं, कठिनाइयों के समय मित्र हैं, स्थिर और शान्त रूप से सलाहकार और परामर्शदाता हैं। वे अपनी ज्योतिर्मयी मुस्कान से हमारी उदासी, हमारे उद्वेग और अवसाद के बादलों को तितर-बितर कर देती हैं। वे हमेशा याद दिलाती रहती हैं कि उनकी सहायता हमारे साथ है। वे शाश्वत सूर्य के प्रकाश की ओर इशारा करती हैं और दृढ़ता, निश्चलता और धैर्यपूर्वक हमें गभीर तथा उच्चतर प्रकृति की ओर सतत प्रेरित करती रहती हैं।

'माता' पुस्तक से *—श्रीअरविन्द*

प्रभु की मुस्कान-छटाएँ

आरामदेह नींद और एक मधुर मुस्कान सूरज की उस किरण के समान है जो सभी बाधाओं को पिघला देती है। एक मधुर मुस्कान प्रत्येक दुर्भावना को वैसे ही पिघला देती है जैसे सूरज मक्खन को।

Mother you said so — २४ दिसम्बर १९५७

अगर तुम उसके व्यंग्यों को मधुर मुस्कान, अचञ्चल मन और शान्त हृदय के साथ सुन सको तो तुम बहुत बड़ी प्रगति कर लोगे। यह तुम्हारे लिए लक्ष्य की ओर उठाया हुआ महान् क़दम होगा।

और उसके लिए यह 'सत्य' की शक्ति का विश्वसनीय प्रमाण होगा; और इस प्राप्ति को आसान बनाने के लिए मैं हमेशा तुम्हारे साथ हूँ।

White Roses: पृष्ठ १९८

मुस्कुराती जाओ और विशेष रूप से जब कठिनाइयाँ आयें तो और भी अधिक मुस्कुराओ। मुस्कानें सूर्य की किरणों की तरह हैं, वे बादलों को छितरा देती हैं... और अगर तुम आमूल उपचार चाहती हो तो यह रहा: **स्पष्टवादिता**, पूरी तरह स्पष्टवादी बनो; मुझे पूरी तरह बतलाओ कि तुम्हारे अन्दर क्या चल रहा है और जल्दी ही उपचार आ जायेगा, एक सम्पूर्ण और सुखकर उपचार।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ११५

मुस्कान कठिनाइयों पर वही क्रिया करती है जो सूर्य बादलों पर—वह उन्हें छिन्न-भिन्न कर देती है।

मुझे नहीं लगता कि कोई ज़रूरत से ज़्यादा मुस्कुरा सकता है। जो व्यक्ति सभी परिस्थितियों में मुस्कुराना जानता है, वह अन्तरात्मा की सच्ची समता के बहुत निकट है।

सामान्य रूप से कहें तो मनुष्य एक पशु है जो अपने-आपको अतिशय

गम्भीरता के साथ लेता है। सभी परिस्थितियों में अपने ऊपर मुस्कुराना जानना, अपने दुःखों और मोह-भंगों, महत्त्वाकांक्षाओं और पीड़ाओं, अपने तिरस्कार और विद्रोह पर मुस्कुरा सकना—यह स्वयं अपने ऊपर विजय पाने के लिए कितना सशक्त अस्त्र है!

हमेशा सभी परिस्थितियों में मुस्कुराना सीखो, अपने दुःखों और सुखों पर, अपनी पीड़ाओं और अपनी आशाओं पर मुस्कुराना सीखो, क्योंकि मुस्कान में आत्म-संयम की परम शक्ति है।

अगर तुम जीवन पर सदा मुस्कुरा सको तो जीवन भी सदा तुम पर मुस्कुरायेगा।

अगर कोई सदा मुस्कुरा सके तो वह सदा युवा रहता है।

शाश्वत स्मित : ऐसी दयालुता जो केवल भगवान् ही दे सकते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. १९६-९७

प्रसन्नतापूर्ण प्रयास : भगवान् की ओर जाने के प्रयास में जो आनन्द मिलता है।

मानसिक प्रसन्नता : वह हर चीज़ में आनन्द लेना जानती है।

प्रसन्नतापूर्ण मन और शान्त हृदय रखो। कोई भी चीज़ तुम्हारी समचित्तता को डिगा न पाये। हर रोज़ लक्ष्य की ओर स्थिरता से मेरे साथ बढ़ने के लिए आवश्यक प्रगति करो।

सुखी हृदय : मुस्कुराता हुआ, शान्त, पूरा खुला हुआ, छायारहित।

यह कभी न भूलो कि नाटकीय होने की अपेक्षा, चुपचाप प्रसन्न रह कर तुम बहुत ज्यादा सहायक होते हो।

प्रसन्न रहो मेरे वत्स, प्रगति का यह सबसे अधिक निश्चित मार्ग है।

सुख-शान्ति उतनी ही संक्रामक है जितनी उदासी—सच्ची और गहरी सुख-शान्ति का संक्रमण लोगों तक पहुँचाने से ज़्यादा उपयोगी और कोई चीज़ नहीं होती।

ख़ुश रहने की कोशिश करो—तुम तुरन्त दिव्य प्रकाश के निकट होओगे।

कभी मत बुड़बुड़ाओ। जब तुम बुड़बुड़ाते हो तो तुम्हारे अन्दर सब तरह की शक्तियाँ घुस जाती हैं और तुम्हें नीचे खींच लेती हैं। मुस्कुराते रहो। मैं हमेशा मज़ाक करती हुई दीखती हूँ पर यह केवल मज़ाक नहीं है। यह चैत्य से उत्पन्न विश्वास है। मुस्कान इस श्रद्धा को प्रकट करती है कि कोई चीज़ भगवान् के विरुद्ध खड़ी नहीं रह सकती और अन्त में हर चीज़ ठीक निकलेगी।

कठिनाइयों को जीतने के लिए आह की अपेक्षा मुस्कान में ज़्यादा शक्ति है।

अग्निपरीक्षाएँ सबके लिए हैं। उनका सामना करने के तरीक़े में फर्क होता है। कुछ लोग मुस्कुराते और कुछ बात का बतंगड़ बनाते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. १९८-९९, २४५, २५३

भगवान् के प्रति सतत अभीप्सा के साथ अन्तर में निवास करना—हमें जीवन को मुस्कान के साथ देखने और बाहरी परिस्थितियाँ चाहे जैसी हों उनमें शान्त रहने में समर्थ बनाता है।

हम भागवत मुस्कान का ध्यान तभी कर सकते हैं जब हम अहंकार पर विजय पा लें।

रही बात समस्त दुर्भावना, ईर्ष्या, लड़ाई-झगड़े और भर्त्सना की, तो इस स्थिति में भी तुम्हें **सच्चाई के साथ** इन सबसे ऊपर उठना चाहिये और कड़वे-से-कड़वे शब्दों के उत्तर में सद्भावनापूर्ण मुस्कान ही देनी चाहिये; और जब तक तुम अपने और अपनी प्रतिक्रियाओं के बारे में पूरी तरह निश्चित न होओ, एक सामान्य नियम के रूप में यही ज़्यादा अच्छा होगा कि तुम चुप ही रहो।

चैत्य पूर्णता का अर्थ है, सब चीज़ों पर मुस्कुराना।

प्राणिक उत्सर्ग : आनन्ददायक रूप से विनम्र और सुगन्धित, यह अपनी ओर ध्यान खींचना चाहे बिना जीवन की ओर मुस्कुराता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. २५७, २८५, २९२, ३७१, ३८८

हे प्रभो, जो कुछ है और जो कुछ होगा उस सबकी गहराइयों में 'तेरी' ही दिव्य तथा अपरिवर्तनशील मुस्कान विद्यमान है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २४५

क्या भौतिक विज्ञान के चमत्कारों पर आपको हँसी आती है?

"चमत्कार"! यह सब ठीक है, यह उन लोगों का काम है। लेकिन उनका अपरिमित आश्वासन मुझे हँसने को प्रेरित अवश्य करता है। वे सोचते हैं कि वे जानते हैं। वे कल्पना करते हैं कि उन्हें कुञ्जी मिल गयी है, इसी बात पर हँसी आती है। उनका विचार है कि जो कुछ उन्होंने सीखा है उसके द्वारा वे 'प्रकृति' के स्वामी बन गये हैं—यह बचपना है। जब तक कि वे सर्जनकारी 'शक्ति' और सर्जनकारी 'संकल्प' के सम्पर्क में नहीं आते, कोई-न-कोई वस्तु सदा उनसे बच निकलेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. २४१-४२

भगवान् के लिए सतत अभीप्सा करते हुए अपने अन्दर निवास करना ही हमें जीवन की ओर एक मुस्कुराहट के साथ देखने तथा शान्तिपूर्वक

रहने के योग्य बनाता है, बाह्य परिस्थितियाँ चाहे कैसी भी क्यों न हों।

वस्तुतः, वस्तुओं को पूर्ण विश्वास की शान्त मुस्कान के साथ देखना ही बुद्धिमत्ता है। क्योंकि अपनी वर्तमान चेतना के साथ मनुष्य परम प्रभु के प्रयोजनों को बिलकुल नहीं समझ सकता।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. ३०९, ३२३

... जीवन की सभी उलझनों के लिए, एक विनोद-भरी मुस्कान रहती है—व्यक्ति अब जिस अवस्था में है यह उसके अपने चुनाव का तथ्य है, और व्यक्ति के लिए चुनाव की स्वाधीनता है, लेकिन लोग इसे भूल गये हैं। यही बात इतनी मज़ेदार है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. ३१-३२

प्रभु का दुलारभरा स्पर्श

लक्ष्मीबाई गोल्डी को, जो एक बहुत ही अद्‌भुत पिल्ला था, श्रीमाँ के पास लाया करती थीं। वहाँ से गोल्डी अपने-आप ही श्रीअरविन्द के कमरे में आ जाया करता था—सचमुच अद्‌भुत! मैं उसे अपने हाथों में उठा कर श्रीअरविन्द के पास ले जाता, वे मुस्कुरा कर, अपने दोनों हाथों से उसको प्यार से सहलाते।

एक दिन वह सीधा वहाँ पहुँच गया जहाँ श्रीअरविन्द बैठे थे और उनके पैर चाटने लगा, एक के बाद दूसरा! श्रीअरविन्द ने न केवल उसे वैसा करने दिया बल्कि धीरे से उस पर झुक कर उसे बड़े दुलार से सहलाया भी। Champaklal speaks पृ. १३०

अपनी मुस्कान बनाये रखो मेरे बच्चे; यही तुम्हें बल प्रदान करती है।

हर परिस्थिति में मुस्कुराना जानना भागवत प्रज्ञा तक पहुँचने का द्रुततम मार्ग है।

—श्रीमाँ

संसार की प्रसन्नचित्त नागरिक

फ़ारस देश में एक स्त्री थी जो शहद बेचने का व्यवसाय करती थी। उसकी बोलचाल का ढंग इतना आकर्षक था कि उसकी दूकान के चारों ओर ग्राहकों की भीड़ लगी रहती थी। इस कहानी को सुनाने वाला कवि कहता है कि यदि वह शहद की जगह विष भी बेचती फिर भी लोग उसे शहद समझ कर ही उससे ख़रीद लेते।

एक क्रुद्ध प्रकृतिवाले मनुष्य ने जब देखा कि वह स्त्री इस व्यवसाय से बहुत लाभ उठा रही है तो उसने भी इसी धन्धे को अपनाने का निश्चय किया।

दूकान तो उसने खोल ली, पर शहद के सजे-सजाये बर्तनों के पीछे उसकी अपनी आकृति सिरके के समान खट्टी ही बनी रही। ग्राहकों का स्वागत वह सदा अपनी कुटिल भृकुटि से करता था। इसलिए सब उसकी चीज़ छोड़ आगे बढ़ जाते थे।

कवि आगे कहता है : "एक मक्खी भी उसके शहद के पास फट कने का साहस न करती थी।" शाम हो जाती, पर उसके हाथ ख़ाली-के-ख़ाली ही रहते। एक दिन एक स्त्री उसे देख कर अपने पति से बोली, "कड़ुआ मुख शहद को भी कड़ुआ बना देता है।"

क्या वह शहद बेचने वाली स्त्री केवल ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए ही मुस्कुराती थी? हम तो यही सोचते हैं कि उसकी प्रफुल्लता उसके भले स्वभाव का एक अंग थी। संसार में हमारा कार्य केवल बेचना और ख़रीदना ही नहीं है; हमें यहाँ एक-दूसरे को मित्र बना कर रहना है। उस भली स्त्री के ग्राहक यह जानते थे कि वह एक शहद बेचने वाली के अतिरिक्त कुछ और भी थी—वह संसार की एक प्रसन्नचित्त नागरिक थी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ.२१२-१३

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

जून

१. भागवत कृपा उसके लिए अनन्त है जो सच्चाई से उस कृपा पर विश्वास करता है।

भागवत इच्छा के प्रति सदा निष्ठावान् बने रहने की शक्ति हमेशा तुम्हारे साथ होती है।

२. निश्चय ही तुम यह न मानते होगे कि कठिनाइयों का सामना किये बिना ही साधना हो सकती है। चूँकि तुम्हारी अभीप्सा सच्ची थी इसलिए तुम्हारी अवचेतना में जो कुछ भागवत प्राप्ति के विरुद्ध था वह रूपान्तरित होने के लिए, ऊपरी सतह पर आ गया है। इसमें दुःखी या उदास होने की कोई बात नहीं है। इसके विपरीत, प्रगति के इन अवसरों पर तुम्हें ख़ुश होना चाहिये। मेरे प्रेम, मेरी शक्ति और मेरे आशीर्वाद की सहायता का सहारा लेना कभी न भूलो।

३. अक्षमता के बारे में ये विचार वाहियात हैं, वे प्रगति के सत्य के निषेध हैं। अगर अभीप्सा हो तो, जो आज नहीं हो सकता वह किसी और दिन होकर रहेगा।

कठिनाई को नयी प्रगति के अवसर में बदलना अच्छा है।

४. स्वयं शान्त और एकाग्र रह कर ऊपर से आने वाली शक्ति को काम करने देना, यही हर चीज़ और सभी चीज़ों का सबसे निश्चित उपचार है। अगर यह ठीक तरह से किया जाये तो ऐसा कोई रोग नहीं है जो इसके विरुद्ध खड़ा रह सके, हाँ, यह समय पर और काफ़ी लम्बे समय तक स्थिर श्रद्धा और अचञ्चल इच्छा के साथ करना होगा।

५. एकमात्र चीज़ जो तुम्हें करनी चाहिये वह है, स्थिर रहना, अक्षुब्ध रहना और एकमात्र भगवान् की ओर मुड़े रहना। बाक़ी सब उनके हाथ में है। यदि कभी किसी दिव्य चीज़ को धरती पर प्रतिष्ठित करना है तो सभी निम्नतर गतिविधियों को जीतना होगा।

६. साधना में प्रगति, तुम किस प्रकार का काम करते हो इससे नहीं बल्कि बाहरी और आन्तरिक वृत्ति के संशोधन से आती है।

७. हाँ, मैं वस्तुओं में भी हूँ इसलिए उनके साथ सावधानी से व्यवहार करना चाहिये।

८. जैसे-जैसे चेतना विकसित होगी, बढ़ेगी, विस्तार पायेगी और प्रबुद्ध होगी वैसे-वैसे तुम अपने काम में अधिकाधिक पूर्ण होते जाओगे।

९. यह वृत्ति बनाये रखो—कभी किसी का पक्ष न लो और कभी कोई व्यक्तिगत झगड़ा न करो—केवल दिव्य शान्ति, सामञ्जस्य, प्रकाश और सुख के बारे में सोचो और उनका अधिकाधिक शुद्ध और स्थिर यन्त्र बनो।

१०. तुम्हें जो चीज़ जाननी चाहिये वह है, ठीक तरह से यह जानना कि तुम जीवन में क्या करना चाहते हो। इसे सीखने में जो समय लगता है उसकी परवाह न करो, क्योंकि जो लोग सत्य के अनुसार जीना चाहते हैं, उनके लिए हमेशा कुछ सीखने के लिए, कुछ प्रगति के लिए होता ही है।

११. हम सुखी होने के लिए धरती पर नहीं है क्योंकि पार्थिव जीवन की वर्तमान दशा में सुख असम्भव है। हम धरती पर भगवान् को पाने और चरितार्थ करने के लिए हैं, क्योंकि केवल दिव्य चेतना ही सच्चा सुख दे सकती है।

१२. भौतिक स्वास्थ्य की तरह मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य भी है। जैसे शरीर और क्रिया-कलाप की सुन्दरता होती है उसी तरह संवेदनों में भी सुन्दरता और सामञ्जस्य होता है।

१३. प्राण उत्साह देता है लेकिन स्वभावतः प्राण अस्थिर होता है और हमेशा नयी-नयी चीज़ों की माँग करता है। जब तक कि वह परिवर्तित होकर भगवान् का आज्ञाकारी सेवक न बन जाये, चीज़ें हमेशा घट ती-बढ़ती रहती हैं।

१४. अनुभूति तार्किक मन से बहुत आगे तक जाती है। स्पष्ट है कि तार्किक मन को भगवान् तक पहुँचना कठिन लगता है, लेकिन सरल हृदय उनसे लगभग बिना किसी प्रयास के नाता जोड़ सकता है।

१५. पहले मनुष्य को जानना चाहिये और फिर क्रिया करनी चाहिये, जब कि मनुष्य पहले क्रिया करते हैं और फिर अपनी क्रिया द्वारा जानना चाहते हैं।

१६. भौतिक मन का एक प्रमुख कार्य है, सन्देह करना। अगर तुम उस पर कान दो तो वह सन्देह के हज़ारों कारण ढूँढ़ निकालेगा। लेकिन तुम्हें यह जानना चाहिये कि भौतिक मन अज्ञान में काम करता है और पूरी तरह मिथ्यात्व से भरा है।

१७. जो मिथ्या सोचते हैं वे मिथ्यात्व और दुःख-दैन्य में रहेंगे। ग़लत विचार से निकल आओ और तुम दुःख-कष्ट से बाहर निकल आओगे।

१८. क्या कोई मन्दिर में गन्दे पैरों से प्रवेश करता है?
उसी तरह, व्यक्ति आत्मा के मन्दिर में दूषित मन के साथ प्रवेश नहीं करता।

१९. मानव सत्ताओं में मानसिक क्रिया-कलापों के विकास के साथ-साथ आत्मवञ्चना की सूक्ष्मता भी बढ़ती है। वे जितने अधिक बौद्धिक होते हैं उतने ही अधिक आत्मवञ्चना में भोले और साथ-साथ कपट-पूर्ण भी होते हैं।

२०. अगर तुम पूरी सच्चाई के साथ भागवत इच्छा को प्रकट करने के लिए कार्य करते हो तो बिना अपवाद के हर काम निस्स्वार्थ बन सकता है, परन्तु जब तक यह स्थिति न आ जाये तब तक ऐसे काम होते हैं जो भगवान् के साथ सम्पर्क जोड़ने के लिए ज़्यादा अनुकूल होते हैं।

२१. काम हाथ में ले लो और श्रद्धा रखो; आवश्यकता के अनुपात में शक्ति आयेगी। तुम्हारी ग्रहणशीलता तुम्हारी श्रद्धा और तुम्हारे विश्वास पर निर्भर होती है।

२२. जब तक तुम कड़ी मेहनत न करो, तुम शक्ति नहीं पाते क्योंकि उस हालत में तुम्हें उसकी ज़रूरत नहीं होती और तुम उसके अधिकारी नहीं होते। तुम्हें शक्ति तभी मिलती है जब तुम उसका उपयोग करो।

२३. कुशल हाथ, स्पष्ट दृष्टि, एकाग्र मनोयोग, अथक धैर्य—और तुम जो भी करोगे अच्छा करोगे।

२४. काम में व्यवस्था और सामञ्जस्य होने चाहियें, जो काम यूँ देखने में बिलकुल नगण्य है उसे भी पूर्ण पूर्णता के साथ, सफ़ाई, सुन्दरता, सामञ्जस्य और सुव्यवस्था के साथ करना चाहिये।

२५. आओ, हम जैसे प्रार्थना करते हैं उसी तरह कार्य करें, क्योंकि वस्तुतः कार्य भगवान् के प्रति शरीर की उत्तम प्रार्थना है।

२६. जब तुम अपने-आपको किसी निःस्वार्थ लक्ष्य को चरितार्थ करने के लिए अर्पित करते हो तो यह आशा कभी न करो कि सामान्य लोग तुम्हारी प्रशंसा या तुम्हारा समर्थन करेंगे। इसके विपरीत, वे हमेशा तुम्हारे विरुद्ध लड़ेंगे, तुमसे घृणा करेंगे और तुम्हें बुरा-भला कहेंगे। लेकिन भगवान् तुम्हारे साथ होंगे।

२७. जब तुम सचमुच बदल जाओगे तो तुम्हारे चारों ओर की सब चीज़ें भी बदल जायेंगी।

२८. तुम्हें सभी तरह की, बाहरी और भीतरी—क्रोध, अधीरता और नापसन्दगी की गतिविधियों से पिण्ड छुड़ा लेना चाहिये। अगर चीज़ें ग़लत हो जायें या ग़लत तरीक़े से की जायें तो तुम बस इतना ही कहो, "श्रीमाँ जानती हैं" और चुपचाप यथासम्भव अच्छी-से-अच्छी तरह, बिना रगड़े-झगड़े के काम करते या कराते चले जाओ।

२९. तिरस्कार और अपमान से ऊपर होना तुम्हें सचमुच महान् बनाता है।

३०. वर दे कि यह घर चैत्य का प्रतीक हो, शाश्वत भागवत 'उपस्थिति' का मन्दिर हो।

श्रीमाँ के साथ पत्र-व्यवहार

(श्रीअरविन्द अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा-केन्द्र की एक विद्यार्थिनी के नाम पत्र जिसने माताजी को सोलह वर्ष की उम्र में पत्र लिखना शुरू किया था।)

मधुर माँ, मैंने देखा है कि मैं अपने भौतिक शरीर को उसकी वास्तविक क्षमता से ज़रा अच्छा कर सकने के लिए बाधित नहीं कर सकती। मैं जानना चाहूँगी कि मैं उसे कैसे बाधित कर सकती हूँ। लेकिन, मधुर माँ, क्या अपने शरीर को बाधित करना अच्छा है?

नहीं।

शरीर प्रगति करने में सक्षम है और जो वह पहले नहीं कर सकता था उसे करना धीर-धीरे सीख सकता है। लेकिन उसकी प्रगति की क्षमता

प्राण की प्रगति की कामना और मन की प्रगति की इच्छा से बहुत धीमी है। और अगर प्राण और मन को कार्य के लिए ज़िम्मेदार बना दिया जाये तो वे शरीर को बहुत तंग करते हैं, उसके सन्तुलन को नष्ट करके स्वास्थ्य बिगाड़ देते हैं। इसलिए तुम्हें बहुत धीरज रखना चाहिये और अपने शरीर की लय का अनुकरण करना चाहिये जो ज़्यादा विवेकशील है और उसे पता होता है कि वह क्या कर सकता है और क्या नहीं।

स्वभावतः, कुछ शरीर तामसिक होते हैं और प्रगति करने के लिए उन्हें कुछ प्रोत्साहन की ज़रूरत होती है।

लेकिन सभी चीज़ों में, सभी अवस्थाओं में तुम्हें सन्तुलन रखना चाहिये।

आशीर्वाद। १३ अक्तूबर १९६९

मधुर माँ, हम पुनर्जन्म पर क्यों विश्वास करते हैं? वर्तमान स्थिति से पहले हम क्या थे?

जिन्हें पिछले जन्मों की याद थी उन्होंने पुनर्जन्म की वास्तविकता की घोषणा की है। ऐसी सत्ताएँ हो चुकी हैं और अब भी हैं, जिनकी आन्तरिक चेतना इतने पर्याप्त रूप से विकसित है कि वे निश्चित रूप से जानती हैं कि उनकी यह चेतना उनके वर्तमान शरीर से भिन्न शरीरों में अभिव्यक्त हो चुकी है और यह इस शरीर के लोप होने के बाद भी बनी रहेगी।

यह कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिस पर बहस की जाये—जिन्हें यह अनुभव हुआ है उनके लिए यह निर्विवाद अनुभूति है।

आशीर्वाद। ५ नवम्बर १९६९

मधुर माँ, जब हम प्रकृति के बीच में हों तो हमें क्या सोचना चाहिये? क्या प्रकृति के साथ सम्पर्क में रहना किसी तरह हमारी सहायता करता है?

सोचने से प्रकृति के साथ तुम्हारा सम्बन्ध नहीं जुड़ सकता, क्योंकि प्रकृति नहीं सोचती। लेकिन अगर तुम गहराई के साथ प्रकृति की सुन्दरता का अनुभव करो और उसके साथ नाता जोड़ो तो यह चेतना को विस्तृत करने

में सहायता दे सकता है।

आशीर्वाद। ९ नवम्बर १९६९

सामान्यतः प्रकृति से प्रेम शुद्ध और स्वस्थ सत्ता का चिह्न है जो आधुनिक सभ्यता के कारण भ्रष्ट नहीं हुई है। शान्त मन की नीरवता में तुम प्रकृति के साथ सबसे अच्छी तरह नाता जोड़ सकते हो।

आशीर्वाद। १३ नवम्बर १९६९

मधुर माँ, हम ईर्ष्या और प्रमाद से कैसे पिण्ड छुड़ा सकते या उन्हें ठीक कर सकते हैं?

स्वार्थ तुम्हें ईर्ष्यालु बनाता है और दुर्बलता तुम्हें आलसी बनाती है।

दोनों ही स्थितियों में एकमात्र सच्चा प्रभावशाली उपचार है भगवान् के साथ सचेतन ऐक्य। वस्तुतः, जैसे ही तुम भगवान् के बारे में सचेतन और उनके साथ एक हो जाते हो वैसे ही सच्चे प्रेम के साथ प्रेम करना सीखते हो : ऐसा प्रेम जो **केवल प्रेम के आनन्द के लिए प्रेम करता है,** जिसे बदले में प्रेम किये जाने की ज़रूरत नहीं है; साथ ही तुम अक्षय भण्डार के उत्स से 'शक्ति' प्राप्त करना सीखते हो और अनुभव से जानते हो कि भगवान् की सेवा में इस 'शक्ति' का प्रयोग करने से तुमने जो कुछ खर्च किया है वह सब और उससे कहीं अधिक प्राप्त करते हो।

मन द्वारा सुझाये गये सभी इलाज, सर्वाधिक प्रदीप्त मन द्वारा भी, केवल शामक होते हैं, उपचार नहीं।

आशीर्वाद। १६ नवम्बर १९६९

मधुर माँ,

कभी-कभी मैं नींद में बोलती हूँ। यह इस बात का चिह्न है कि मन नियन्त्रण-रहित है, है न? तो मुझे सोते समय शान्त रहने के लिए क्या करना चाहिये?

साधारणतः रात को जब शरीर सोता है तो मन उसमें से बाहर चला जाता

है क्योंकि उसके लिए अधिक समय तक चुपचाप रहना मुश्किल है; इसीलिए अधिकतर लोग नहीं बोलते। लेकिन ऐसा लगता है कि तुम्हारा मन शरीर में ही रहता है, इसलिए तुम्हें उससे कहना चाहिये कि वह पूरी तरह चुपचाप और नीरव रहे ताकि तुम्हारा शरीर भली-भाँति आराम कर सके। उसके लिए सोने से पहले ज़रा-सी एकाग्रता निश्चित रूप से प्रभावकारी होगी।

आशीर्वाद। २९ नवम्बर १९६९

मधुर माँ, जब शरीर सोया हुआ हो तो क्या मन के लिए शरीर से बाहर जाना अच्छा होता है? मन जाता कहाँ है?

हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग सम्भावनाएँ हैं। जितने व्यक्ति हैं उतने ही उदाहरण होते हैं। लेकिन हर एक सीख सकता है कि उसके आराम के लिए सबसे अच्छी अवस्थाएँ कौन-सी हैं।

तुम जैसे अपने दिनों के बारे में सचेतन रहती हो उसी तरह अपनी रातों और अपनी नींद के बारे में भी सचेतन रह सकती हो। यह आन्तरिक विकास और चेतना के अनुशासन की बात है।

आशीर्वाद। १ दिसम्बर १९६९

मधुर माँ, "सचेतन होने" से आपका क्या मतलब है? क्या अपने अन्दर भागवत उपस्थिति के बारे में सचेतन होना ही एकमात्र चीज़ है या अपनी गतिविधियों, अपनी वाणी आदि के बारे में सचेतन होना भी महत्त्व रखता है?

तुम विश्वास रखो कि भागवत उपस्थिति के बारे में सचेतन होना अपने-आपमें तुम्हारी सत्ता की सभी बातों में बहुत बड़ा परिवर्तन ला देता है और समस्त मानसिक, प्राणिक और भौतिक क्रियाओं पर एक असामान्य नियन्त्रण ला देता है। और यह नियन्त्रण, तुम बाह्य साधनों से जो कुछ पा सकते हो उससे अनन्तगुना शक्तिशाली और प्रकाशमान होता है।

आशीर्वाद। ९ दिसम्बर १९६९

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. ४४८-४५१

आज की कहानी

(कई बरस पहले स्व. रवीन्द्रजी द्वारा लिखी (श्रीमाँ की एक कहानी से प्रेरित) यह कहानी 'पुरोधा' में प्रकाशित हुई थी। तब भी इसका शीर्षक 'आज की कहानी' था, आज सालों बाद, धरती की वर्तमान स्थिति में, वही शीर्षक एकदम सटीक बैठता है, और न जाने कब तक यह यूँ ही चलता रहेगा... कब तक? जब तक मनुष्य न बदलेगा, शीर्षक भी नहीं बदल पायेगा... —सं.)

अभी न सृष्टि थी न स्रष्टा। दिशा और काल का अभी कहीं पता न था। पता होता भी किसे? न तो कोई ज्ञाता था और न कोई ज्ञातव्य। बस एक परम पुरुष था, अनादि, अनन्त। उसके बारे में वाणी मौन है और बुद्धि निस्तब्ध। कल्पना अपना पूरा ज़ोर लगा कर भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकती। हम चाहे जिस शब्द का उपयोग करें वह वहाँ पर ग़लत बैठता है। फिर भी कहानी सुनाने के लिए शब्दों का उपयोग तो करना ही होगा।

एक दिन उसके मन में आया कि चलो अपने अन्दर की अनन्त सम्भावनाओं का खेल किया जाये। **एकोऽस्मि बहु स्याम्।** झट अपने एक अंश को पूरी स्वाधीनता दे दी कि वह खुल खेले और हर असम्भव सम्भावना को प्रकट करे। उस अंश ने देखा कि वह एक महान् चेतना का अंग है। उसने सोचा, चलो निश्चेतन बन कर देखा जाये। उस समय सोचने में और करने में अधिक अन्तर न हुआ करता था। झट एक निश्चेतन ने जन्म लिया। चेतना में प्रकाश था, आनन्द था। यहाँ सब कुछ संज्ञाहीन, निबिड़ अन्धकार बन गया। चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार, सब कुछ निश्चेतन, मृत्यु का साम्राज्य। **तम आसीत् तमसा गूढमग्ने।**

परम पुरुष की सर्जक शक्ति ने, आद्या शक्ति अदिति ने इस घोर निराशाभरे अन्धकार को, निश्चेतन को देखा और उनके करुणाभरे हृदय से पुकार निकली, हे नाथ, यह क्या? क्या तेरा प्रत्याख्यान करने के लिए ही सृष्टि रूप ले रही है? करुणामय ने झट अपनी चेतना का एक कण निश्चेतना में बो दिया और बोले, 'लो, अब इस निश्चेतना में से चेतना के नये अंकुर फूटेंगे और वह दिन आयेगा जब निश्चेतना सचेत हो उठेगी। इसे ऊपर लाने का काम तुम्हारे ज़िम्मे रहा।'

यह सुनते ही भगवती ने प्रेम का रूप धारण किया और इस ठोस अन्धकार और मृत्यु के सागर में छलाँग मारी। निश्चेतन के लिए, जो अपने मूल को भूल चुका था, यह एक नया अनुभव था। प्रेम ने उसके अन्दर हलचल पैदा कर दी। पहले-पहल चार शक्तियाँ उत्पन्न हुईं। उनमें जीवन था, ज्ञान था, प्रकाश था और था आनन्द। चारों ने मिल कर भगवती को प्रणाम किया और आदेश माँगा। भगवती ने कहा, 'भगवान् खेल करना चाहते हैं। अकेले रहते-रहते बहुत काल बीत गया, अब अपने अनन्त रूप देखना चाहते हैं। सामने निश्चेतन का सागर पड़ा है। भगवान् ने उसमें चेतना का बीज बो दिया है, अब अनन्त सम्भावनाओं का मार्ग खुल गया है, तुम जाओ और इस मिट्टी में से भाँति-भाँति की सृष्टियाँ तैयार करो।' चारों बड़े आनन्द के साथ कूदते-फाँदते चल पड़े। कुछ ही समय में एक सौन्दर्यमयी सृष्टि का सूत्रपात हुआ। चारों मिल कर काम करते थे और चारों भगवती अदिति से प्रेरणा और शक्ति लेते रहते थे। परन्तु नाटक का परदा गिरा। अब दूसरे दृश्य की बारी थी। अदिति की प्रथम सन्तान में अहं उत्पन्न हुआ। अभी तक चारों एकमन होकर काम कर रहे थे। अब हर एक ने सोचा, *मैं ही सब कुछ हूँ।* सारा काम मेरे ही बल पर हो रहा है। आख़िर माँ भगवती भी तो मेरे ऊपर आश्रित हैं, मेरे ही कारण उनका राज्य चल रहा है। हर एक ने अपने स्वतन्त्र साम्राज्य का विस्तार करना चाहा। नदी ने उत्स से अपना सम्बन्ध काट लिया। जीवन बन गया मृत्यु, ज्योति ने अन्धकार का रूप धारण कर लिया, इसी तरह प्रेम ने घृणा तथा चेतना ने निश्चेतना का जामा पहन लिया। भगवती ने देखा और मुस्कायीं। उनकी ही सन्तान और उन्हीं से उलटी हो गयी।

भगवती अदिति के लिए यह सब बायें हाथ का खेल था। अब उन्होंने देवों को जन्म दिया। जीवन और मृत्यु की, अन्धकार और प्रकाश की लड़ाई शुरू हो गयी। देवों के कारण प्रथमजात शक्तियों को असुर नाम मिला। देवासुर संग्राम छिड़ गया। देवों ने और असुरों ने अपनी-अपनी सेना तैयार की और नाटक आगे बढ़ा। उधर भगवती के प्रयास से चेतना का बिरुवा बड़ा होता जा रहा था। देवता और असुर, जिसको जहाँ स्थान मिलता था, अपने पैर जमाते जा रहे थे। चप्पे-चप्पे ज़मीन के लिए दोनों में युद्ध हो रहा था। सृष्टि का विस्तार लगातार बढ़ता जा रहा था। प्रकृति

के पास न साधनों की कमी थी न विचारों की। चेतना का अंकुर बढ़ चला था। चेतना की एक-एक नयी परत खुलती जा रही थी। हर परत पर सृष्टि नये रूप लेती जा रही थी। चेतना के पहले स्पन्दन ने जड़ कहाने वाले पदार्थों को रूप दिया। अनगिनत लोक पैदा हुए; सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों ने जन्म लिया। सारा आकाश सृष्टि से भर गया। हर कोने में सौन्दर्य था। एक विशाल देदीप्यमान सौन्दर्य। नक्षत्र एक-दूसरे से पूछते थे—इस सबका उद्देश्य क्या है? उन्हें क्यों इस निरन्तर गति में डाल दिया गया? लेकिन जवाब कौन देता? ठहर कर सुनने या उत्तर देने की फ़ुरसत किसे थी? वहाँ तो गति थी, निरन्तर गति। हमारी धरती भी उनके साथ चक्कर लगाती जा रही थी। उसे मालूम था कि भविष्य उसी के गर्भ में है। प्राण आया, चारों ओर जीवन लहलहा उठा, प्रकृति के चेहरे पर एक सुन्दर स्मित दौड़ा। अनगिनत पौधे अपने फूल-पत्तों को लेकर नाच उठे। निश्चेतन के साथ युद्ध में चेतना ने पहली बड़ी लड़ाई जीत ली। पौधों में, बेलों में ज्योति के लिए अभीप्सा थी। ज्योतिपुञ्ज सूर्य उन्हें प्राण प्रदान करता था। प्रकृति और आगे बढ़ी। पशु आये, पक्षी आये, उनके साथ सौन्दर्य का नया रूप आया, चेतना और एक क़दम ऊपर उठ गयी।

समय की गिनती तो न थी पर हम कह सकते हैं कि लाखों वर्ष बीत गये। प्रकृति फिर से एक बड़ा क़दम लेने को तैयार हुई। अब पुराने खेलों से उसका मन ऊब गया था। उसे नये खिलौनों की खोज थी। चेतना को प्रकट करने के लिए उसने जितने खेल रचे थे उनका उद्देश्य पूरा हो चुका था। अब इस नाटक का अंक बदलने वाला था।

सारी सृष्टि में कोलाहल हो उठा। प्रकृति-नटी अपने रुद्र रूप में दिखायी दे रही थी। निश्चेतन में ज़ोरों का प्रकम्पन हो रहा था। मनुष्य के आगमन की ख़ुशी में सारी धरती आनन्द की हिलोरें लेने लगी। आज चेतना का एक नया अध्याय शुरू होगा। अभी तक धरती देवों और असुरों की समरभूमि थी। आज जन्म लेने वाला उन दोनों को पीछे छोड़ कर आगे बढ़ सकेगा। मनुष्य कोशिश करेगा तो माँ भगवती का लाड़ला सपूत बन सकेगा; धरती, आकाश, पाताल तीनों पर उसका दख़ल होगा। वह समुद्रों की छाती पर अपने यान चलायेगा और अब तक रहस्यमय रूप से बन्द आकाश भी उसके लिए घर के आँगन की नाईं होगा। रत्नगर्भा वसुन्धरा

उसे रत्नों से सजाएगी और रत्नाकर उसके आगे भेंट लिये खड़ा रहेगा।

मनुष्य का प्रादुर्भाव हुआ। उसके अन्दर, ठीक उसके हृदय में भागवत चेतना की चिनगारी आकर बैठ गयी। देवों ने देखा, वे सन्न से रह गये। इसके आगे हमारा सारा देवत्व मलिन हो जायेगा। इसके अन्दर की चिनगारी प्रचण्ड अग्नि बन सकेगी, यह हमारी परवाह न करके सीधा परात्पर से बातें करेगा और सर्वोच्च चेतना से नाता जोड़ कर उसे धरती पर ला सकेगा। काश! हमें भी इसका शरीर प्राप्त होता, हमारे अन्दर भी चैत्य पुरुष का अवतरण हो पाता। हम जहाँ हैं वहीं बने रहेंगे और यह ज़रा-सा मानव हमसे भी आगे बढ़ जायेगा। इन्द्र आदि देव बृहस्पति के पास जा पहुँचे और बोले—भगवन्, हम अपने-आपको महान् समझते थे, हमारा ऐश्वर्य, हमारा सुख देख कर बड़े-बड़े असुर ईर्ष्या से जला करते थे, पर इस नये जन्तु को देख कर कँपकँपी आ रही है। हमें असुरों से जीतने के लिए इसकी सहायता लेनी होगी। कुछ ऐसा उपाय बतायें गुरुदेव कि यह हमारे वश में हो जाये। उधर असुरों ने भी नज़दीक आकर देखा। मनुष्य क्या था, मांस का एक लोथड़ा। पहले तो उन्होंने सोचा, उनके लिए नया खाद्य है, नरम-नरम-सा, गरम-गरम-सा, पर उस पर मुँह मारने जो चले तो शुक्राचार्य चिल्लाये—सावधान, यह देखने में छोटा है पर है बड़ा भयंकर। इसके अन्दर स्वयं भगवती छिपी हुई हैं। ज़रा-सी बिजली पहाड़ पर गिरती है तो उसके टुकड़े-टुकड़े कर देती है, बड़वानल इतने बड़े सागर को नाच नचा देता है और इसी तरह इसके अन्दर जो चिनगारी छिपी है, वह सब असुरों का विनाश कर सकेगी और विनाश से भी बढ़ कर, उनके असुरत्व को बदल डालेगी, इससे सावधान।

बात न असुरों की समझ में आयी न देवों की। दोनों ने इतना समझा कि इसके पास एक अमूल्य निधि है, उसे हथियाना चाहिये। इधर से देवगण, उधर से असुर मनुष्य पर टूट पड़े। कहाँ मुट्ठी-भर का मनुष्य, कहाँ ये बड़ी-बड़ी सेनाएँ। धरती काँप उठी। आकाश डोल गया। सर्वनाश होने की तैयारी थी। लेकिन 'जाको राखे साइयाँ मेट सके कब कोय'। भगवती ने मानव-शिशु पर अपनी स्नेहभरी दृष्टि डाली और उसका जीवन सुरक्षित हो गया। असुरों को सारे देवता मनुष्य-रूप दिखायी देने लगे और देवों के लिए असुर मनुष्य-से हो गये। दोनों सेनाओं में तुमुल युद्ध हुआ। लड़ते-लड़ते

दोनों सेनाएँ थक कर चूर हो गयीं। भगवती ने उनकी आँखों के सामने का परदा उठा दिया। वस्तुस्थिति देख कर सभी लज्जित हो गये। दोनों ने देखा, मानव के तो खेंख तक न आयी थी और दोनों दल लहू-लुहान थे। उनका उत्साह टूट चुका था, उनके मन निढाल थे।

शुक्राचार्य ने युद्ध में भाग न लिया था। उन्होंने कहा—तुम अपने बल से इसे नीचा न दिखा पाओगे। इसके अन्दर अनेक छिद्र हैं, उनमें से होकर इसमें घुस जाओ और इसे अपने हाथ में ले लो। बृहस्पति ने भी सुना और उन्होंने यही राय देवों के आगे रख दी। दोनों दल नये उत्साह से, नये कौशल के साथ मनुष्य पर अधिकार जमाने की टोह में लग गये।

मनुष्य का अपने स्रष्टा से सीधा सम्बन्ध था। वह हर बात के लिए उन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करता था। प्रकाश की गौएँ उसके लिए सुलभ थीं, सोमरस उसका रोज़ का पेय था। सृष्टि में वह नया-नया ही आया था पर उसकी आत्मा हर जगह अपने-आपको और अपने अन्दर सबको देखती थी। उसे कहीं कुछ पराया न दीखता था। लेकिन वह स्वर्णयुग बहुत दिन न चला। अभी बहुत-सी परतें अन्धकार में पड़ी थीं। उन्हें ऊपर उठाना था और आलोकित करना था। धीरे-धीरे मन की परतें खुलती गयीं। हृदय में स्थित चैत्य पर मानों परदा पड़ गया और मनुष्य फिर से अन्धकार में डूबने-उतराने लगा। देवता और असुर इसी अवसर की ताक़ में थे। जब तक हृत्पुरुष काम कर रहा था तब तक इनका साहस न हुआ कि मनुष्य में प्रवेश करें। उसके छिप जाने से असुरों की बन आयी और उसके अहं के रास्ते अन्दर घुस गये, वह उनका नातेदार जो ठहरा! उन्हें खदेड़ते हुए देवता भी आ पहुँचे, दोनों ने आकर मानस-पटल पर अपने डेरे डाल लिये और यह उनका युद्धक्षेत्र बन गया। अब निचली परतें भी खुलने लगीं और हर स्तर पर, चेतना की हर परत पर ज़ोरों से संग्राम होने लगा। आसुरी शक्तियाँ हमेशा ज़्यादा बलवान् रही हैं, उन्होंने मनुष्य को मनमाना नाच नचाया। मनुष्य ने बहुतेरी कोशिश की पर उसका बस न चला। हार कर उसने टेर लगायी और भगवती आद्या शक्ति को धरती पर आना पड़ा। उनके आते ही प्रकाश की शक्तियों ने एक नया बल पाया। बलवान् शत्रु जब आशा छोड़ कर लड़ता है तो बड़ा भयंकर हो जाता है और मरते-मरते अपने शव के नीचे बहुतों को पीस जाता है। लड़ाई अन्तिम मोर्चे

पर लड़ी जाने लगी। दोनों ओर से अधिक-से-अधिक शक्ति का प्रयोग होने लगा। ऊपरी दृष्टि से तो यही लगता था कि दैवी शक्तियों का अन्त नज़दीक है परन्तु देखने वाले देख सकते हैं कि इस खण्ड-प्रलय के बाद नया स्वर्गयुग आरम्भ होगा, अन्धकार का राज्य समाप्त हो जायेगा और चेतना का उच्चतम स्तर धरती पर शरीर धारण करेगा।

यही है आज की कहानी, और यही है आज का सन्देश।

'पुरोधा' जनवरी १९८८ से —स्व. श्री रवीन्द्रजी

... जिस क्षण वैयक्तिक चेतना भागवत 'चेतना' से, अपने दिव्य मूल स्रोत से अलग हुई और जिस क्षण उसने भागवत 'चेतना' की क्रिया का अनुसरण करना बन्द कर दिया, वह उससे दूर हो गयी, तभी अलगाव पैदा हो गया। दिव्य 'चेतना' अपनी ही क्रिया का अनुसरण करती है, और यदि वैयक्तिक चेतना उसका अनुसरण न करे अथवा अपना रास्ता बदल ले या उसकी चाल धीमी पड़ जाये, तो पृथक्ता आ जाती है। विश्व के सारे दु:ख-कष्टों का कारण यही है कि वैयक्तिक चेतना किसी-न-किसी कारण से मूल 'चेतना' से अलग हो गयी। वह जान-बूझकर अलग नहीं हुई, किन्तु उसके साथ एक होकर नहीं रह सकी। अतएव, क्योंकि वह उसके साथ अपना तादात्म्य नहीं रख सकी, और जब भागवत 'चेतना' ने एक विशेष क्रिया का अनुसरण किया, तो यह किसी और के पीछे चल पड़ी, तब स्वभावतया दोनों एक-दूसरे से अधिकाधिक दूर होती गयीं। एक दृष्टान्त लें: एक व्यक्ति एक विशेष गति से आगे बढ़ता है, और दूसरा, क्योंकि उसके साथ नहीं रह सकता, अधिकाधिक पीछे छूटता जाता है; पहला आगे निकल जाता है और दूसरा पीछे छूट जाता है। यह लँगड़ाते हुए धीमी चाल से चलता है जब कि वह उड़ता-सा आगे बढ़ता जाता है; जब दूसरा एक पग आगे बढ़ाता है पहला एक छलाँग लगा लेता है। इसके फलस्वरूप, दोनों अधिकाधिक अलग पड़ते जाते हैं। इसी अलगाव ने सभी अलगावों को जन्म दिया और इन्हीं ने विश्व के दु:ख-कष्ट भी पैदा किये —कम-से-कम पृथ्वी के दु:ख-कष्ट जिन्हें हम जानते हैं। यह आरम्भ हुआ चेतना की पृथक्ता से और इसका अन्त हुआ जगतों की तथा जड़-प्रकृति के तत्त्वों की पृथक्ता से। —श्रीमाँ

मुस्कान के मनके

बच्चे मन के ख़ूब सच्चे होते हैं। किसी ने सोलहों आने सच कहा है कि बच्चे भगवान् का छोटा रूप हैं। उनका भोलापन किसका मन नहीं मोह लेता? बच्चों के संग बैठ कर दु:खी से दु:खी इन्सान अपने सारे ग़म भूल जाता है। सभी बड़े अपनी ज़िन्दगी में कई बार दोहराते हैं—"आह, कहाँ गये बचपन के वे मासूम दिवस?" लेकिन अगर हम अपनी तथाकथित बुद्धिमानी के परदे को ज़रा सरका कर देखें तो हमारा वही नन्हा-मुन्ना, भोला-भाला रूप हमें दुबका हुआ नज़र आयेगा, हलकी-सी टकोर से हम उसे जगा कर अपने क़रीब खींच सकते हैं, और जब-जब हम बड़े ऐसा करते हैं तो वही बच्चे बन जाते हैं जिसकी तलाश हम ज़िन्दगी में आये दिन किया करते हैं।

इस भूमिका के साथ हम भी कुछ पल बच्चों के साथ बिता कर ताज़ादम हो लें।

किसी अध्यापिका ने एक बार अपने छोटे विद्यार्थियों को ईश्वर के नाम पत्र लिखने को कहा। कुछ विद्यार्थियों की चिट्ठियाँ देखें—

प्रिय ईश्वर,

क्या लड़के लड़कियों से ज़्यादा अच्छे होते हैं? मैं जानती हूँ कि तुम लड़के हो, फिर भी ठीक-ठीक बताना। तुम्हारा जवाब पाने पर ही मैं अपनी राय तुम्हें दूँगी, पर कहीं यह मत समझ लेना कि मैं लड़की हूँ इसलिए निष्पक्ष नहीं हो पाऊँगी। और ज़रा जल्दी करना, कल कक्षा में किसी लड़के से मेरी बहस हो गयी थी इसलिए ठीक जवाब जानने के लिए मैंने तुम्हें जल्दी से चुपचाप चिट्ठी लिख दी।

शाम तक चिट्ठी पाने की आशा में। —सिल्विया

प्रिय ईश्वर,

मुझे वैज्ञानिक कहानियाँ बहुत अच्छी लगती हैं। तुमने तो विज्ञान की बड़ी अजीब-अजीब चीज़ें बनायी हैं। वे सब तुम्हें कहाँ से सूझीं? मैं भी बड़ा होकर तुम्हारी ही तरह वैज्ञानिक बनना चाहता हूँ, मदद करोगे न?

—तुम्हारा जिम्मी

प्रिय ईश्वर,

क्या तुम स्वर्ग में अपने सारे छोटे-मोटे काम अपने फ़रिश्तों से करवाते हो? मेरी माँ कहती हैं कि धरती पर हम भाई-बहन तुम्हारे छोटे-छोटे फ़रिश्ते ही हैं इसलिए हमें ही घर के सारे छोटे-छोटे, ऊपरी काम करने चाहियें।

प्यार के साथ।

—तुम्हारी मारिया

प्रिय ईश्वर,

गिरजे जाना वैसे तो ठीक है, पर क्या तुम वहाँ ज़्यादा अच्छे संगीत का प्रबन्ध नहीं कर सकते? मुझे उबाऊ लगता है वह। आशा है तुम इस बात का बुरा न मानोगे।

क्या तुम कुछ नये संगीत नहीं लिख सकते? तुम्हारे पास बहुत गृहकार्य हो तो किसी और से ही लिखवा लो न? वैसे कुछ समय बाद, अपने भाई के जितना बड़ा हो जाने पर मैं भी तुम्हारी कुछ सहायता कर पाऊँगा, लेकिन कहीं मेरे भैया से मदद मत माँग लेना, क्योंकि माँ कहती हैं कि उसका मन सारे दिन शैतानियों में लगा रहता है और तुम्हारी मदद न कर पाने पर वह तुमसे आँखें चुरायेगा और इतवार को गिरजे न जाने के ज़रूर बहाने बनायेगा।

तुम्हारे काम का बोझ कुछ हलका हो और तुम नये संगीत का इन्तज़ाम जल्दी ही कर सको... इस आशा के साथ—

—तुम्हारा दोस्त हैरी

प्रिय ईश्वर,

तुमने मुझे इतने बढ़िया माता-पिता दिये हैं, उसके लिए मैं तुम्हारा धन्यवाद करती हूँ। इसलिए भी तुम्हें धन्यवाद देती हूँ कि तुमने कुत्ते, बिल्लियाँ और मछलियाँ दी हैं और यह दुनिया दी है जिसमें हम रहते हैं। और तुमने यह सब देखने के लिए आँखें दी हैं। और जो हम खाते हैं और जो हमें दिमाग दिया है, उसके लिए भी धन्यवाद।

हर उस चीज़ के लिए धन्यवाद जो तुमने हमें दी है और जो तुम हमें दोगे।

—तुम्हारा मैक्सिम

मेरे ईश्वर,

हमने वह पाठ पढ़ा है जिसमें यहूदी लोग समुद्र में आगे बढ़े तो पानी एक तरफ़ हट गया और वे उसे पार कर गये। इसी तरह अच्छे काम करते रहना। मैं भी यहूदी हूँ।

—पाउला

प्रिय ईश्वर महोदय,

जो लोग आपको मानते नहीं हैं, उनके बारे में आप क्या सोचते हैं? मैं तो नहीं, कोई और यह जानना चाहता है।

वैसे जहाँ तक मेरी बात है, अगर कोई मेरी बात नहीं मानता तो पहले मैं उसे समझाने की कोशिश करता हूँ, अगर बार-बार नहीं मानता तो मैं उससे नाराज़ हो जाता हूँ। लेकिन आप तो किसी से ख़फ़ा हो ही नहीं सकते, क्योंकि आप तो ईश्वर हैं।

—आपका नील

प्रिय ईश्वर,

जब तुमने बाइबल लिखी तो तुमने ख़ुद ही शब्द बनाये और उन्हें जैसे चाहा लिखा। यह बहुत अच्छी बात है। मैं भी कई बार ऐसे ही लिखता हूँ, पर मैं उतना अच्छा लिख नहीं पाता।

—रॉन

प्रिय ईश्वर,

जब कोई मर जाता है तो क्या होता है? मुझे कोई भी बताता नहीं है। आपको तो पता होगा। मैं बस जानना चाहता हूँ, पर मैं मरना नहीं चाहता।

—आपका दोस्त माइक

प्रिय ईश्वर,

हम शुक्रवार को दो हफ़्तों के लिए छुट्टियों पर जा रहे हैं। सो हम गिरजे नहीं आ सकेंगे। मैं आशा करती हूँ कि हमारे लौटने पर तुम वहीं होगे। तुम्हारी छुट्टियाँ कब होती हैं? अगर मेरे साथ ही पड़ रही हैं तो बहुत

अच्छा, हम स्विट्ज़रलैण्ड की पहाड़ियों पर जा रहे हैं, अगर तुम्हारा भी वहीं का कार्यक्रम बन जाये तो बहुत बढ़िया रहेगा। वहाँ गिरजाघर तो होंगे ही और दो-दो इतवार भी पड़ेंगे। अगर तुम भी वहाँ आये तो मैं गिरजा में चल रहे संगीत से ही समझ जाऊँगी, क्योंकि तुम अपने साथ यहीं का संगीत तो ले चलोगे न? अच्छा, तो शायद वहाँ भी हम मिलें...। छुट्टियों का तुम भी भरपूर आनन्द उठाना।

—तुम्हारी जैकी
'पुरोधा' जुलाई २००६ से

अपने हृदय में पकड़ लूँगी

माँ, मैं आपको अपने हृदय में पकड़ लूँगी। मुझे शान्ति और सुख के बारे में सोचने की ज़रूरत नहीं। अगर आप हमारे हृदयों में निवास करें तो ये चीज़ें—सुखद स्थिरता, अपरिवर्तनशील शान्ति, प्रकाशमयी नीरवता—निश्चित रूप से रहेंगी।

मुझे पकड़ने के लिए तुम्हें कहीं दूर न जाना होगा क्योंकि मैं पहले से ही तुम्हारे हृदय में मौजूद हूँ और जैसे ही तुम्हारी आँखें खुलेंगी कि तुम मुझे वहाँ देख पाओगी। अनुभव करने की अपनी क्षमता को बाहर छितराने की जगह अन्दर की ओर मोड़ो, तो तुम मेरी उपस्थिति को उतने ही ठोस रूप में (बल्कि उससे भी बढ़ कर) अनुभव कर सकोगी जैसे तुम सरदी, गरमी को अनुभव करती हो।

२ फ़रवरी १९३४

मेरी प्यारी माँ, यह सच है कि आप पहले से ही मेरे हृदय में हो। लेकिन मुझे आँखें खोलना नहीं आता। वे सोते समय को छोड़ कर बाक़ी सारे समय तो खुली ही रहती हैं।

मैं तुम्हारी भौतिक आँखों की नहीं, आन्तरिक आँखों की बात कर रही हूं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १६, पृ. १०६-०७

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

— श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन— 0565—3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st June 2017
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group vatika

Nature Friendly

"My child is in Grade 2. My son's journey with this school started 3 years back.

What really drew me to the school at the first instance is the calmness that prevails in the atmosphere!

Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy – class rooms in MatriKiran are the most nature friendly, spacious, well ventilated, they open out to green spaces... perfect to stay in communion with nature."

Dr. Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 2

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2017-18

ICSE Curriculum

MatriKiran
www.matrikiran.in

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 9

Junior School
W Block, Sec 49, Sohna Rd, Gugaon
+91 124 4938200, +91 9650690222

Senior School
Sec 83, Vatika India Next, Gugaon
+91 124 4681600, +91 9821786363